फरवरी 1977

मैत्री

ईशावास्यं इदं सर्वम्

❀ इस अंक में ❀

संपादक

सुशीला अग्रवाल, कुसुम देशपांडे,

मीरा भट्ट, कालिन्दी

वर्ष 14 अंक 2 12 फरवरी 1977

प्रश्नोत्तर

विनोबा

ज्ञानप्रबोधिनी, पुणे की शिक्षिकाओं से : 28.12.76

प्रश्न : किस प्रकार के जीवन को आप 'कृतार्थ' जीवन कहेंगे ? कला, विद्या, समाजोन्नति, ईश्वर, इनमें से किसी को समर्पित जीवन को, या व्यवहार में रहते सचाई और मेहनत के आधार पर पैसा-प्रतिष्ठा प्राप्त कर लोकोपयोगी बनाये हुए जीवन को ?

उत्तर : जिस मनुष्य को काम-क्रोध-लोभ खतम हुए हैं ऐसा अनुभव आता होगा, उसका जीवन कृतार्थ है ।

प्रश्न : क्या इलेक्ट्रान, प्रोटान जैसे निर्जीव कणों में चेतना है ?

उत्तर : वह कहना कठिन है, लेकिन बाबा की श्रद्धा ऐसी है कि दुनियाभर में चैतन्य भरा हुआ है । जिसको आप जड कहते हैं, उसमें भी चैतन्य है । उसको हम देख नहीं सकते । हमारी देखने की शक्ति सीमित है । चैतन्य सर्वत्र भरा हुआ है । कहीं वह दीखता है, कहीं दीखता नहीं । हम लोगों ने श्रद्धा रखी है कि 84 लक्ष योनियां हैं । आप लोगों ने कीडे देखे होंगे छोटे-छोटे, वे कुल मिला कर कितने प्रकार के होंगे ? बाबा ने जो छोटे-छोटे कीडे देखे यहां, उनकी गिनती की, 40 प्रकार के हुए । लेकिन उसके अलावा और प्रकार भी होंगे कीडों के, फिर पशु-पक्षियों के प्रकार भी हैं । और 84 लक्ष, यह तो हम पृथ्वी की बात करते हैं । बाबा की तो कल्पना है कि मंगल इत्यादि पर भी अनेक प्रकार होंगे । बाबा की श्रद्धा है कि प्रत्येक कण-कण में चैतन्य भरा हुआ है ।

प्रश्न : आत्मा के बारे में ज्ञान और अनुभव, इसमें क्या फरक है ?

उत्तर : ज्ञान बौद्धिक/हो सकता है। बुद्धिगत होता है, हृदयगत नहीं। बुद्धि को ज्ञान हुआ, उससे अनुभव नहीं होता। अनुभव तब होता है, जब हृदय को ज्ञान होता है। यह फरक है दोनों में।

प्रश्न : आत्मसाक्षात्कार या ईश्वरदर्शन कब होता है ? क्या वह बुद्धिगम्य है ? वह होने से पहले क्या ईश्वर पर श्रद्धा रखनी चाहिए ?

उत्तर : श्रद्धा रखना आप पसंद करते हैं ? यहां कौन है जो श्रद्धा रखना नहीं चाहता ? जो नहीं रखना चाहता उसको नास्तिक कहते हैं। वे कहते हैं, ऊपर ये अनंत सितारे हैं, उनको पैदा करनेवाला कहा रहता होगा ? उन सितारों से भी ऊपर रहता होगा ! कहां रहता होगा ? मालूम नहीं। इसलिए ईश्वर को न मानना ठीक है। लेकिन ईश्वर को न मानने पर भी अंतरात्मा को तो मानते होंगे। ईश्वर को न मानते हुए भी अंतरात्मा को मानते हैं तो ठीक है। ईश्वर को न मानें, ईश्वरदर्शन शब्द को छोड दें, आत्मसाक्षात्कार शब्द ठीक है। कब होता है वह ? क्या वह बुद्धिगम्य है ? बुद्धिगम्य नहीं है, वह अनुभव का विषय है। आत्मसाक्षात्कार तब होगा, जब वासना खतम होगी। एक भी वासना शेष नहीं रहेगी तब होगा। शरीर है इसलिए खाना-पीना पडेगा, इसलिए दुनिया की थोडी सेवा करेंगे, लेकिन वासना एक भी रहेगी नहीं चित्त में, काम, क्रोध इत्यादि विकार खतम होंगे, तब आत्मसाक्षात्कार होगा।

प्रश्न : जो ब्रह्मचारी रहना चाहती है ऐसी स्त्री को कौनसे नियमों और पथ्यों का पालन करना चाहिए ?

उत्तर : ऐसी जो स्त्रियां होंगी उनको महावीर ने सलाह दें रखी है कि कम से कम तीन स्त्रियों को इकट्ठा होना चाहिए। तीनों मिल कर जायें समाज में। यह महावीर ने कहा है। और बुद्ध ने उलटा कहा है। उन्होंने अकेले घूमने को कहा है। उस जमाने में तो क्या, इस जमाने में भी अकेली स्त्री को घूमना शक्य नहीं है। इसलिए गौतम बुद्ध ने स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी। लेकिन एक बार उनके शिष्य आनंद के आग्रह पर एक बहन को उन्होंने दीक्षा दी।

और कहा कि 'हे आनंद, तुम्हारे आग्रह पर मैं इसकी दीक्षा दे रहा हूं, लेकिन खतरा उठा रहा हूं; इसके बुरे परिणाम आयेंगे और अपना धर्म जितना टिक सकता था उससे आधा टिकेगा।' क्योंकि अकेले घूमना! अकेले घूमने का तत्त्व स्वीकार किया था। तो यह परिस्थिति इस जमाने में भी है और उस जमाने में भी थी। इसलिए मैंने कहा, तीन मिल कर घूमो। जैसे जैन स्त्रियां घूमती हैं सारे भारत में।

प्रश्न : इस देश का पिंड आध्यात्मिक है, इसका अनुभव आपको कहां-कहां आया?

उत्तर : बाबा को खुद अपने में आया। जो संत, महापुरुष हो गये – भारत में हो गये, योरप में हो गये, अमरीका में हो गये, जगह-जगह हुए – उनका जितना साहित्य पढ सकता था, उतना बाबा ने पढ लिया। परिणाम यह आया कि मनुष्य का पिंड आध्यात्मिक है, बाबा की ऐसी श्रद्धा हो गयी। केवल इस देश का ही नहीं, दूसरे देशों का भी, कुल मानवजाति का पिंड आध्यात्मिक है।

प्रश्न : प्राचीन ग्रंथों में शाश्वत बात कौनसी है?

उत्तर : एक निर्णय हो जाये तो और सब निर्णय हो जायेंगे। दुनियाभर में शाश्वत क्या है? इस पर अनेक प्रश्न खडे होंगे। लेकिन एक निर्णय पक्का होना चाहिए कि शरीर अशाश्वत है, जानेवाला है, शाश्वत नहीं है। इसवास्ते इसका जितना उपयोग हो सकता है उतना किया जाये। और शाश्वत क्या है? आत्मतत्त्व शाश्वत है। इसलिए मृत्यु से न डरें। वह तो दुःख से छुडानेवाली है। जो छुडानेवाली है उससे हम डरते हैं। उससे डरना नहीं चाहिए। आत्मा अमर है, शाश्वत है, इतना ध्यान में रखें और शरीर अशाश्वत है। प्राचीनों ने जो कहा उसमें शरीर के साथ जो संबधित होगा वह अशाश्वत है और आत्मा के साथ संबंधित होगा वह शाश्वत है।

प्रश्न : शरीर और मन को उत्तम आराम किस प्रकार दे सकते हैं?

उत्तर : उत्तम आराम का एक साधन है नामस्मरण और गाढ निद्रा। गाढ निद्रा आये, ऐसा विचार करें। स्वप्न आयें तो उसे लिख रखें। तो फिर-फिर से वही स्वप्न आयेंगे नहीं। नामस्मरण और गाढ निद्रा उत्तम आराम है।

◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆

गुरु-संवाद

विनोबा

गुजरात के साथियों से हुए वार्तालाप से :
ता : 2 से 6 दिसंबर 1976

गुजराती में जो आध्यात्मिक साहित्य है नरसिंह मेहता, दयाराम इत्यादि का उसमें से बाबा ने क्या नहीं पढा है, यही सवाल है। बहुत सारा पढ लिया है। इस समय का जो आखिरी साहित्य है वह भी पढ लिया है। जैसे कलापि का केकारव – और उसमें से एक वचन बाबा को हमेशा याद आता है –

तारा उपर तारातणां झूमी रह्यां जे झूमखां
ए याद आपे आंखने, गेबी कचेरी आपनी
आ खूनने चरखे अने राते अमारी गोदमां
आ दम-ब-दम बोली रही झीणी सितारी आपनी

आप लोगों ने कुछ सवाल रखे हैं कि आज की जो परिस्थिति है, उस परिस्थिति के बारे में हमको कुछ करना चाहिए या नहीं ? इसका जवाब मैंने सुबह दिया कि एक-एक गांव का संगठन करें और बापू का जो रचनात्मक कार्यक्रम दिया है तदनुसार गांव तैयार हो जाये, इसके लिए कोशिश करें; और साथ-साथ एकादशव्रत का पालन करने की कोशिश करें तो सर्वशक्ति हमारे हाथ में आ जायेगी। गांव के लोगों को शक्ति मिलेगी। बाबा ने भूदान चलाया, वह गरीबों को कुछ राहत मिले इसलिए चलाया। परंतु बाद में ग्रामदान का जो विचार निकला उसका उद्देश्य यह था कि ग्रामशक्ति खडी हो। और अगर ग्रामशक्ति खडी होगी तो उसके सामने सरकारी शक्ति टिकेगी नहीं। अंग्रेजी में एक वचन है – "मेन मे कम ॲण्ड मेन मे गो, बट् आई गो ऑन फॉर एवर (लोग आते रहें, जाते रहें, परंतु मैं हमेशा जारी रहूंगा) !" अनेक राज्य आयेंगे, अनेक राज्य जायेंगे, परंतु ग्रामशक्ति मजबूत रहेगी तो देश बचेगा। केवल देश ही नहीं, समूचे विश्व को मार्गदर्शन मिलेगा। एक वाक्य याद आता है, साबरमती के आश्रम में प्रार्थना में कई बार भजन गाया जाता था – मारी नाड तमारे हाथे हरि संभाळजो रे, इसके बदले में हम लोग बोलते

हैं, 'मारी नाड तमारे हाथ इंदिराजी संभाळजो रे'। यह तो मैंने विनोद में कहा।

रचनात्मक कार्य में बहुत बडी शक्ति है। वह शक्ति प्रकट हो इसी लिए ग्रामदान का विचार आया। गुजरात में ग्रामदान भले ही ज्यादा न हुए हों, फिर भी ग्रामपरिवार एक बने, यह कोशिश तो कर ही सकते हैं, और इससे बहुत लाभ होगा। गुजरात के लोग यह कर सकते हैं, क्योंकि गुजरात को अभी गांधीजी का विस्मरण नहीं हुआ है।

बाबा की पूरी शिक्षा बडोदा में हुई। बाबा ने मातृभाषा के तौर पर मराठी ली थी और एक विदेशी भाषा के तौर पर फ्रेंच। परंतु गुजराती सुनने को मिलती। बडोदा में एक ज्युबिली उद्यान है। बाबा ने उसका नाम रखा था बुद्धोद्यान। वहां बुद्ध की एक उत्तम मूर्ति थी। बाबा हमेशा उसका ध्यान करता। बुद्ध घर छोड कर निकल गये, उसका बाबा पर बहुत असर था। घर छोडने की प्रेरणा बाबा को जिनसे मिली उनमें बुद्ध और शंकराचार्य थे। तो संपूर्ण भारतवर्ष में पदसंचार हुआ और आखिर में जो बात कही वह ग्रामदान की कही। उसमें ग्राम को मजबूत करना चाहिए, यही विचार था। इसलिए अब आप ज्यादा आशंका मत रखें, पूर्ण श्रद्धा से, भक्ति से ग्राम-संगठन का काम करें।

आज जो राज्य चलता है उसमें कुछ ठीक है, कुछ बेठीक है। गुजराती में बोलना हो तो कहना चाहिए 'ठीकाठीक छे'। यह बहुत सुंदर शब्द है! मनुस्मृति में एक वचन आया है – भद्रंभद्रं इति ब्रूयात्। अगर अच्छा हो तो भद्रम् कहें और ठीक न हो तो भद्रंभद्रं कहें – दो दफा भद्रम् बोलें। तो गांव-गांव जा कर रचनात्मक कार्यक्रम करें। हर गांव में सर्वधर्म की प्रार्थना होगी तो बहुत लाभ होगा। गांधीजी प्रार्थना पर बहुत जोर देते थे। आखिरी दिन भी उन्होंने पूछताछ की थी कि प्रार्थना में कौन आये थे और कौन नहीं आये थे। उनको मालूम हुआ कि अमुक लोग नहीं आये थे तो कहने लगे कि यह तो मेरा ही दोष है, मुझमें अभी प्रार्थना इतनी स्थिर नहीं हुई है उसी का यह परिणाम है। यों कह कर वह सारा दोष अपने पर ले लिया, इतना महत्त्व प्रार्थना को गांधीजी देते थे। हमको भी गांव-गांव में प्रार्थना करनी चाहिए। नंबर एक, रचनात्मक कार्यक्रम; नंबर दो, सर्वधर्म प्रार्थना; नंबर

तीन, ग्रामपरिवार की पूरी योजना, नंबर चार, खादी-ग्रामोद्योग वगैरह। इतना आप श्रद्धापूर्वक करेंगे तो ग्रामशक्ति खडी होगी। राज्य तो आते रहेंगे, और जाते रहेंगे, उनको कोई याद नहीं करेगा।

ग्रामदान की बात जब चली थी तब गुजरात के किसी बडे व्यक्ति ने कहा था कि गुजरात तो हर वस्तु को तोल-तोल कर लेता है। तब मैंने कहा था कि यह तो ठीक ही है, तोल-तोल कर लेना चाहिए, पर मीराबाई ने सूचना दे रखी है –

हीरा माणेक ने झवेर तजीने कथीर संगाथे मणि तोळ मा रे

पंडित मालवीयजी का एक वाक्य मुझे याद आता है। जब अंग्रेजों का राज था तब उन्होंने कहा था,

ग्रामे ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे ग्रामे शुभा कथा
पाठशाला मल्लशाला, गवां सदनमेव च

गांव-गांव में सभा और उत्तम कथा चलनी चाहिए। वे भागवत के प्रेमी थे तो भागवतकथा पर बहुत जोर देते थे। गांववालों को सिखाने के लिए स्वतंत्र पाठशाला हो, अंग्रेजी शाला नहीं। शरीर मजबूत करने के लिए गांव-गांव में मल्लशाला और गोपालन के लिए गोसदन हो। यह जो वाक्य मालवीयजी ने कहा था, वह आज भी पूरा लागू होता है।

* * *

शंकर, रामानुज, कबीर सारे भारतभर घूमते रहे। भारत में जमीन का एक भी चप्पा नहीं, जिस पर संतों के पांव न पडे हों। इसलिए भारतभूमि का जो वैभव गाया गया, वैसा दूसरे देश का नहीं गाया गया। भारत के लिए कहा गया, **दुर्लभं भारते जन्म** – भारतखंड में जन्म पाना दुर्लभ है। यह तो हर किसी राष्ट्र को लागू होता है। परंतु यहां तो आगे कहा गया कि उसमें भी मानव का जन्म पाना तो और भी दुर्लभ है। ऐसा राष्ट्रगीत बाबा ने दूसरा सुना नहीं। भारतभूमि का इतना वैभव गाया गया, इसका कारण क्या है? इसी भूमि ने दुनिया को संदेश दिया कि किसी प्राणी की हत्या नहीं करना चाहिए। मांसाहार नहीं करना चाहिए। मांसाहार-परित्यागी लोग अब

इंग्लैंड-अमरीका में भी पैदा हो रहे हैं। लेकिन यह संदेश भारत से ही दुनिया को मिला है। ऐसी भूमि में जब हम पैदा हुए हैं तो हमको छोटी-छोटी चीजों की तरफ ध्यान नहीं देना चाहिए।

गुजरात का संदेश दुनियाभर में पहुंच गया है। शायद ही दुनिया का कोई देश होगा, जहां गुजराती न पहुंचा हो। मुझे तो यहां तक कहा गया कि ईसा मसीह भी गुजरात में आ गये थे और जिसको पालिताणा कहते हैं उस पर से पैलेस्टाईन हुआ। ईसा मसीह कश्मीर में आये थे, यह तो बाबा को पहले से ही मालूम था, लेकिन यह पालिताणावाली नयी जानकारी बाबा को मिली। ग्रीक लोगों ने जब भारत पर हमला किया कृष्ण के जमाने में, – वह जो ग्रीक था उसको कालयवन कहते हैं – जब आपस-आपस में लडाई शुरू हो गयी तब उसे टालने के लिए भगवान कृष्ण मथुरा छोड कर द्वारिका चले गये।

इसलिए गुजरात के लोगों को अपने को गुजरात तक सीमित नहीं रखना चाहिए। भारतभर में घूमते रहना चाहिए। इस तरह घूमनेवालों में बाबा को तो आप जानते ही हैं। लेकिन आचार्य तुलसी आदि कई जैन भाई-बहनें भारतभर में घूमते हैं। और, जैनों का मुख्य स्थान एक बिहार है और दूसरा गुजरात है। उसके बाद वे तमिलनाड तक गये हैं। कई लोग तो यहां तक मानते हैं कि तमिलनाड का जो सर्वोत्तम ग्रंथ है तिरुक्कुरल, उसके लेखक को भी जैनों से प्रेरणा मिली थी। कर्नाटक में तो जैनों के बहुत बडे स्टैच्यू हैं। इस तरह सारे भारत में महापुरुषों की यात्राएं चलीं। आप लोग जानते हैं, बहनों की पदयात्रा (लोकयात्रा) आपके गुजरात में हुई। उनकी यात्रा को नौ साल हो रहे हैं। अब वे बिहार पूरा कर आगे बढी हैं। उससे बहनों को प्रेरणा मिलती है। सब लोग सुनने आते हैं, बहुत असर पडता है। तो गुजरातवालों को केवल गुजरात तक सीमित नहीं रहना चाहिए। सारे भारत में घूमना चाहिए।

★ ★ ★

तुकाराममहाराज का एक वचन है – **भोळीवेचें लेणें विष्णुदासा साजे।** भोलापन एक अलंकार है। उसके सामने द्वैत टिकता ही नहीं। जो विष्णुदास

हैं, वैष्णव हैं, उनकी यह शोभा है। उनका सब लोग अविरोध करते हैं, कोई विरोध नहीं करता। ऐसे भोले महादेवभाई थे। गुजराती, मराठी, हिंदी, संस्कृत, बंगाली और अंग्रेजी, इतनी भाषाएं वे जानते थे। और बापू के लेखों में सुधार कर के वे देते थे। इतना उत्तम कार्य करते थे, काफी ज्ञान था उनको। फिर भी वे भोले थे।

एक दफा साबरमती के किनारे बैठ कर बाबा कुछ भजन गा रहा था। उतने में उधर से रोने की आवाज सुनायी दी। बाबा ने देखा कि कौन रोता है, तो मालूम हुआ कि महादेवभाई रो रहे थे, भजन सुन कर रो रहे थे। इतनी भक्ति, भोलापन उनमें था। इसलिए महादेवभाई का स्मरण बाबा कभी भूलता नहीं।

महादेवभाई 1942 में गये। तब बाबा की उम्र 47 की थी, महादेवभाई 50 के थे। बाबा से तीन साल बडे थे। वे 'शॉक' (धक्का) से मर गये। काहे का शॉक? बापू और बाबा की चर्चा हुई थी। बापू ने जेल में जाने के बाद आमरण अनशन की बात सोची थी। बापू ने बाबा को बुलाया और पूछा, आपकी क्या राय है? उनकी अपनी राय होने के बाद वे बाबा को बुलाते और पूछते थे। बाबा ने कहा, "जो काम ज्ञानपूर्वक रामजी कर सकते हैं, वह काम श्रद्धापूर्वक हनुमान कर सकता है। इसलिए आप अगर उपवास करेंगे तो हमारे जैसे लोग भी आपके साथ उपवास करेंगे।" यह सारी चर्चा महादेवभाई ने सुनी। उनको लगा कि इन दोनों का अब एकमत हो गया है तो अब बापू के विरोध में कोई अपना मत दिखायेगा नहीं। अगर बापू से विरोध या मतभेद बता सकता था तो वह बाबा ही था। और वह तो 'ॲग्री' (सहमत) हो गया। तो उनको लगा कि अब तो उपवास होगा और शायद मृत्यु भी होगी। उनको शॉक लगा और उसी से उनकी मृत्यु हुई। उन्होंने बापू की डायरी प्रकाशित की है। 25-30 भाग प्रकट हुए हैं, एक-एक 400-500 पृष्ठों का होगा। कई भाग तो अभी प्रकाशित होने बाकी हैं। इतना उन्होंने लिख रखा। वे जब गये तब बापू की आंखों से आंसू आये और वे कहने लगे, उनको मेरे बाद जाना चाहिए था, मेरे पहले चले गये। किशोरलालभाई

ने कहा, जवान-जवान लोग क्यू तोड कर आगे चले जाते हैं, बूढे लोग पीछे रह जाते हैं, महादेवभाई वैसे ही क्यू तोड कर गये। महादेवभाई का सहज स्मरण हुआ तो आपके सामने रखा।

जो लोग ऐसे भोले होते हैं, उनके सामने किसी का विरोध टिकता ही नहीं। हृदय-परिवर्तन हो जाता है। जो लोग तार्किक होते हैं, उनके सामने तर्क चलता है और फिर तर्क के खिलाफ तर्क, तो बात बनती नहीं। जो भोले होते हैं, वे हृदय में श्रद्धा रखनेवाले होते हैं। तो सामनेवालों पर भी श्रद्धा रखते हैं, इसलिए सामनेवाले को उन पर श्रद्धा रखना अपरिहार्य हो जाता है।

ब्रह्मसूत्र में है, तर्क अप्रतिष्ठित है, तर्क को पक्की बुनियाद नहीं है। उसके सामने दूसरा तर्क खडा हो जाता है। श्रद्धा के सामने कोई तर्क टिकता नहीं। वेद में एक सूक्त है श्रद्धासूक्त, वह महादेवभाई को कंठ था। उसमें तीन-चार मंत्र हैं। सुबह में हम श्रद्धा का आवाहन करते हैं, दोपहर में हम श्रद्धा का आवाहन करते हैं, शाम को हम श्रद्धा का आवाहन करते हैं –

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचिः श्रद्धे श्रद्धापयेहनः

श्रद्धा को भगवान के ऊपर रखते हैं, श्रद्धा भगवान के सिर पर भी है। इसमें प्रार्थना की है कि हे श्रद्धा, हम सबको तू मजबूत बना।

हमारे देश में पढे-लिखे विद्वान लोग हैं, उनमें तर्क-वितर्क बहुत चलता है, परंतु आम जनता अत्यंत श्रद्धावान है। क्या गुजरात में, क्या तमिलनाड में, किसी भी प्रांत में ग्रामीणों में पहुंच जाते हैं तो पूर्ण श्रद्धा का भान होता है। इसलिए आप लोगों को गांव में पहुंचना चाहिए। गांवों में किसानादि खेती करते हैं, उनको बहुत ज्यादा मजदूरी वगैरह नहीं मिलती, लेकिन वे अत्यंत श्रद्धावान होते हैं। इसलिए आप लोगों को गांव में पहुंचना चाहिए। एक छोटा-सा जिला गुजरात में ले सकते हैं, जो अनुकूल मालूम हो। एक जिले

में, गांवों में रचनात्मक काम पूरा करें। उससे आपको भी शिक्षण मिलेगा। किस प्रकार काम करना इसका अनुभव आयेगा। धीरेनभाई ने इसको 'मार्गखोजन' नाम दिया है।

★ ★ ★

जब सब उपाय खतम हो जायें, तो अच्छे काम के लिए सत्याग्रह, यह एक शाश्वत विचार है। उसमें इतना सोचना होता है कि सामनेवाले के **पास जो सत्य का अंश पडा हो, उसका ग्रहण करना चाहिए।** जो सत्य ग्रहण करता है, वही सत्याग्रही हो सकता है।

सेन्सरशिप उठनी चाहिए, यह ठीक है। मुझे कहा है कि सरकार भी सेन्सरशिप ढीली कर रही है। पूरी छोडी नहीं, फिर भी कुछ कम की है, ऐसा सरकार की तरफ से कहा जा रहा है। वस्तुस्थिति क्या है, मालूम नहीं। सेन्सरशिप उठेगी तो उसमें सरकार का भी भला है। क्योंकि तब, वास्तव में लोकमत क्या है, इसका सरकार को पता चलेगा। आज सब ठीक ही चल रहा है, ऐसा सरकार को भास हो सकता है। सरकार की नीति के विषय में लोगों की क्या राय है, वह वाणी के द्वारा और पत्रादि के द्वारा प्रकट हो जाये तो सरकार के लिए भी अच्छा है। नहीं तो सरकार को पता ही नहीं चलेगा कि वस्तुस्थिति क्या है। उसमें से स्फोट हो सकता है।

यह जो मिसा है, उसमें राजनैतिक कारणों से पकडते हैं, और दूसरा, (आर्थिक) चोरी वगैरह के कारणों से। चोरी वगैरह के लिए जो मिसा है वह चलना चाहिए। राजनैतिक कारणों से मिसा का उपयोग नहीं होना चाहिए। उनको छोड देना चाहिए।

आपको बोलने का अधिकार चाहिए न? सरकार ने जो बीस सूत्री कार्यक्रम दिया, उसमें पांच सूत्र और बढा दिये, उसके खिलाफ तो आप नहीं हैं, ऐसा मैं मानता हूं। भाषणबंदी के सामने बोलना है, तो बोल सकते हैं। पदयात्रा के द्वारा समझा सकते हैं। और दूसरी ओर सघनक्षेत्र में उत्तम रचनात्मक कार्य करें, उत्तम ग्राम बनायें। इसका मैंने थोडे में मंत्र दिया है —

"कपडा बनाओ और मक्खन खाओ।" एक ओर सघन कार्य और दूसरी ओर व्यापक प्रचार-कार्य। **व्यापक प्रचार-कार्य में किसी की निंदा नहीं करनी है। मुख्य अनिंदाव्रत होना चाहिए।** अपनी राय लोगों के सामने रख सकते हैं। मुझे आशा है, इस प्रकार किसी की निंदा न करते हुए तटस्थ भाव से आज की परिस्थिति के बारे में जिनको जो लगता है वह रखें तो अच्छा परिणाम आयेगा।

जो जेलबद्ध हैं उनके बारे में जिम्मेवारी तो जो अब जेल से छूटे हैं उन बडे-बडे लोगों पर आती है। आप पर क्यों आयेगी? कहा है न, 'जेनुं काम तेनाथी थाय, बीजो करे तो गोथां खाय'।

* * *

मैंने कई दफा कहा है, बडोदा में जब हम विद्याभ्यास करते थे तब बंगाल के पांच पुरुषों को याद करते थे – राजा राममोहनराय, रामकृष्ण परमहंस, रवींद्रनाथ टागोर, विवेकानंद और श्रीअरविंद। लेकिन जब बाबा ने बंगाल की पदयात्रा की तो देखा कि गांव के लोगों को इन पांचों में से एक का भी नाम मालूम नहीं था। बारह-तेरह वर्ष पहले की यह बात है। अब परिस्थिति बदल गयी हो, तो मालूम नहीं। गांव-गांव के लोगों को एक ही नाम मालूम था, चैतन्य महाप्रभु का। गांव-गांव में "हरि बोल हरि बोल", नदिया से सदिया तक। चैतन्य का जन्मस्थान नवद्वीप है और सदिया यानी असम की सीमा। वहां तक चैतन्य महाप्रभु घूमे थे। आज जिसको बांगला-देश कहते हैं वहां भी बाबा थोडे दिन घूमा था। तब वह पूर्व पाकिस्तान कहलाता था। वहां दो जिलों में घूमना हुआ। तब ध्यान में आया कि वहां सिर्फ तीन नाम लोगों को मालूम थे। मुहम्मद पैगंबर, बुद्धदेव और चैतन्य महाप्रभु। इसके अलावा चौथा नाम उनको मालूम नहीं था। मुहम्मदसाहब का नाम मालूम होना तो स्वाभाविक था, क्योंकि वे मुसलमान थे, परंतु साथ-साथ चैतन्य महाप्रभु का नाम भी मालूम था। कहना यह चाहता हूं कि भारत किसको याद रखता है और किसको भूल जाता है, इसका यह दर्शन है।

आप लोगों को कल मैंने बताया था कि छोटा-सा क्षेत्र लीजिए और गांधीजी का जो रचनात्मक कार्य है, वह परिपूर्ण कीजिए। दूसरी-तीसरी

चीजों में ध्यान मत दीजिए। जैसे कबीर ने कह दिया था – नरक पचत वाको पचवा दे। दुनिया का क्या होगा उसकी चिंता छोड दीजिए। फिर मैंने आपको घूमने के लिए कहा वह तो केवल 'हरि बोल हरि बोल' के लिए कहा। वैसे घूमते-घूमते आप लोग कुंभमेले में भी जा सकते हैं। उत्तम आध्यात्मिक साहित्य वहां हर आदमी के पास पहुंचा सकते हैं। बहुत बडी सेवा होगी वह !

* * *

जब हम बाहर की परिस्थिति का सोचते हैं, तो आज की हालत में भारत के बारे में सोचना कुछ छोटी चीज है। कम से कम सोचना हो तो पूरी पृथ्वी के लिए सोचना चाहिए। बचपन में हम सुनते थे कि कुल सात ग्रह हैं। सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि। उसमें राहु-केतु जोड देते थे तो नौ ग्रह हो जाते थे। फिर विज्ञान की खोज हुई तो दो ग्रह और खोजे गये। कुल ग्यारह हुए। लेकिन रेडिओ ॲस्ट्रॉनॉमी नाम का विज्ञान निकला है, वह कहता है कि हम जो 'आकाशगंगा' देखते हैं, जिसमें असंख्य तारिकाएं होतीं हैं, ऐसी हजारों आकाशगंगाएं हैं। और जिसको हम प्लैनेट (ग्रह) कहते हैं, – प्लैनेट यानी जहां प्राणियों की वस्ती संभवनीय है – ऐसे कम से कम 50 लाख प्लैनेट हैं। उनमें से एक प्लैनेट हमारी पृथ्वी है। इसलिए कम से कम सोचना हो तो हमारी पृथ्वी के बारे में सोचना चाहिए। केवल भारत के बारे में सोचना गलत है।

भारत की स्थिति दुनिया की स्थिति पर निर्भर है। मान लीजिए, कल लडाई शुरू हो जाये तो वह लडाई केवल हिंदुस्तान के अंदर तक सीमित नहीं रहेगी। दुनिया के अनेक देशों के बीच वह छिड जायेगी तो आपको तुरंत कुछ करना पडेगा। अथवा इतनी योग्यता हो कि कुल दुनिया के लिए कह सकें, तो कहना होगा। अपनी सरकार ने सिक्किम को भारत का एक प्रांत बनाया, वह ठीक या बेठीक, उसके बारे में मतभेद हो सकता है। परंतु वह जो कार्य हुआ उससे सीधा संबंध तिब्बत से हो गया। इसलिए जब लडाई होगी तब केवल भारत के बारे में सोचना गलत होगा। भारत पर अनेक राष्ट्रों का प्रभाव है और भारत का अनेक राष्ट्रों पर प्रभाव है। इसलिए मैंने

आचार्यों के सामने बात रखी थी कि आचार्यों का संगठन कम से कम भारत तक करिए। वास्तव में वह विश्व तक होगा तब दुनिया पर असर पडेगा। लेकिन जब भारत तक भी नहीं हो रहा तो दुनिया की बात अलग ही है। अब निष्पक्ष, निर्भय, निर्वैर, तीनों बातें एकत्र हों, ऐसा मनुष्य तो 'मनुष्याणां सहस्रेषु' होगा। इस्रायल और अरब देशों के बीच झगडा कायम है। वह पूरा नहीं हुआ। उसके पास तैलास्त्र है। उसने वह प्रयुक्त किया तो इंग्लैंड तक की हालत कठिन हो गयी। तेल के आधार पर सब हैं। यहां गाय के गोबर का गैसप्लांट हो तो तेल की समस्या हल हो जायेगी। तो एक नयी चीज मिल गयी। इसलिए आज की परिस्थिति में दुनिया की समस्याएं एकत्र हैं। पाकि-स्तान के अंदर झगडे कायम हैं। बांगलादेश की समस्या भी बहुत जोरदार है। पानी के बंटवारे के बारे में काफी झगडे चल रहे हैं। जपान और कोरिया के साथ भी सवाल है। अमरीका में जो मुख्य था वहां अब दूसरा आ गया। उसका असर भारत पर हो सकता है। ऐसी सब समस्याएं अखिल जागतिक हैं। आप लोग सघनक्षेत्र लें, और कुछ सोचना चाहेंगे तो अखिल जागतिक सोचिए। इसलिए बाबा ने हमेशा कहा कि एक ओर 'जय ग्रामदान' करो और दूसरी ओर 'जय जगत' कहो। 'जय भारत' नहीं कहा। जगत से कम भाषा अब चलेगी नहीं।

★ ★ ★

राजनैतिक समस्याएं तो हर जमाने में होती हैं। कुल दुनिया में शांति बनाने के लिए यूनो संस्था बनी हुई है। जगह-जगह, जहां अशांति होती है वहां वह अपनी सेना भेजती है। वह शस्त्रधारी सेना होती है। रूस के पास 50 लाख सैनिक होंगे, अमरीका के पास भी उतने ही होंगे, तो युनो के पास 50 हजार होंगे। मैंने एक सुझाव दिया था, वह सुझाव वहां पहुंचा है। मैंने कहा कि तुम लोग सात लाख शांतिसैनिक बनाओ और जहां भी झगडा हो, वहां बीच में जा कर वे खडे रहेंगे और शांतिपूर्वक मर मिटेंगे। वैसा यदि करेंगे तो भारत दुनिया का 1/7 हिस्सा है, तो भारत एक लाख शांतिसैनिक दे सकता है। लेकिन अभी तक उनको यह बात जंची नहीं। वे शस्त्र-सैनिक रखते हैं।

मैंने आप लोगों से बात करते हुए कहा था कि भारत का चिंतन नाकाफी है। सारे विश्व का चिंतन करना होगा। तो भारत, एक लाख तो छोड दीजिए, दस हजार शांतिसैनिक तैयार करे और जहां-जहां अशांति होती है वहां पहुंच जायें तो बहुत बडा काम होगा। गुजरात में लगभग तीन करोड लोग हैं, भारत का 1 /20 हिस्सा। इस हिसाब से भारत के लिए 10 हजार तो गुजरात के लिए 500 शांतिसैनिक खडे हो जायें तो क्रांति हो जायेगी। शांतिसैनिक किसी भी पक्ष का नहीं होगा और जहां अशांति होगी वहां पहुंच जायेगा। तो क्या गुजरात में इतने शांतिसैनिक हो सकते हैं? गुजरात में 18 जिले हैं, 20 समझिए, तो हर एक जिले में 25 शांतिसैनिक हों। यह कोई अव्यवहार्य नहीं है, हो सकता है।

ये लोग कह रहे हैं, आज की परिस्थिति में किसी की हिम्मत नहीं है। कठिन परिस्थिति में ही हिम्मत की जरूरत होती है। मैं इसे अव्यवहार्य नहीं मानता। हर जिले में 25 खडे हो सकते हैं। जब बाबा का गोवधबंदी के लिए उपवास जाहिर हुआ था, तब केंद्रीय सरकार ने वह समाचार सेन्सर किया, कहा कि वह खबर कहीं पहुंचनी नहीं चाहिए क्योंकि उससे अशांति होगी। मुझे जब पूछा गया तब मैंने कहा कि अशांति होती तो वह बाबा की जिम्मेवारी होती। परंतु हमारे कार्यकर्ता साथी घर-घर घूमे और लगभग सारे भारत में खबर पहुंच गयी। आखिर में एक महीना प्रचार-कार्य बंद किया, जिससे सरकार को शांति से सोचने का मौका मिले। आखिर इंदिराजी ने मान्य कर लिया। यह जो घटना हुई वह सौम्य सत्याग्रह का नमूना है।

★ ★ ★

तरुणों को अपनी शक्ति रचनात्मक काम में लगानी चाहिए। और बातों की तरफ ध्यान नही देना चाहिए। कबीर ने कहा कि यह शरीर एक चादर है। सो चादर सुर नर मुनि ओढी, ओढी के मैली कीनी चदरिया। परंतु दास कबीर ने चादर को मैली नहीं होने दिया और जैसी थी वैसी वापस कर दी। दास कबीर जतन से ओढी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया। कबीर 120 साल जीये और जब गये तब बिलकुल शांति से, पूर्ण निर्मल अवस्था में गये।

बाबा के जीवन के 81 साल पूरे हुए। अब वह कितना जीयेगा भगवान को मालूम ! महर्षि अरविंद 78 वर्ष के हो कर मरे। उससे बाबा को तीन साल और हो गये, इसलिए बाबा मान लेता है कि शरीर जल्दी जा सकता है। जाते समय पूर्ण शांति से, प्रसन्न हो कर जाये तभी तो जीवन जीत लिया। वैसे तो बाबा ने सारा भारत देख लिया। लगभग 50,000 मील की यात्रा हुई, यानी दो पृथ्वी-प्रदक्षिणा हुई। उसमें बाबा को क्या देखने को मिला? बाबा पर यह असर पडा है कि सारे हिंदुस्तान में लोकहृदय भक्ति से भरा है। केरल प्रदेश में बाबा गया वहां बाबा को जो सवाल पूछे गये वे सबके सब राजनैतिक सवाल थे। लेकिन बाबा जब गुजरात में आया तब सबके सब आध्यात्मिक सवाल पूछे गये। महाराष्ट्र में दोनों प्रकार के पूछे गये। जब मैंने यह देखा कि गुजरात में एक भी राजकीय सवाल नहीं पूछा गया, तब मेरे ध्यान में आया कि गुजरात की क्या खास बात है। वैसे तुलसीदासजी ने कहा ही है कि कुमति सुमति सब के उर बस हि – हरएक में कुछ कुमति, कुछ सुमति वसी है, लेकिन फिर भी हमारे गुजरात के जो साथी हैं उनके हृदय में काफी भक्ति, श्रद्धा और सद्भावना है।

भजन का अर्थ

गांधीजी

हम भजन किसलिए गाते हैं? हम संस्कृत किसलिए सीखते हैं? उत्तर यह है कि संस्कृत सीख कर विद्वान बनें। इसलिए संस्कृत साधन है। इसी तरह भजन भी एक साधन है। यह साधन आत्मदर्शन के लिए है। आत्मदर्शन का क्या अर्थ? इसका लौकिक अर्थ यह है कि किसी भी तरह अच्छे बनें अथवा सच्चे बनें। अर्थात् सत्य में रमे रहें। सत्य क्या है, यह देखने के लिए ग्रंथ

नहीं देखने, परंतु अंतर में गहरे उतर कर ही सत्य के दर्शन करते हैं। यह करने का उपाय भजन है। और वह किसी की मदद के बिना भी हो सकता है। भजन में हमने अशुद्ध उच्चारण किया हो तो भी ईश्वर लाठी ले कर मारनेवाला नहीं है। हम 'करवट' कहें या 'करवत' कहें, उससे कोई फरक नहीं पडेगा। अर्थ जान लें, इतना काफी है। इसलिए उच्चारण भले ही सही न हो, राग भी भले ही न आता हो, केवल भजन भजता हो तो उसका भजन सार्थक ही है, केवल समाज के लिए शुद्ध छपाई और उच्चारण की जरूरत है। भजन का अर्थ यह है कि हम जहां-तहां से ईश्वरमय बनें, अच्छे बनें, सच्चे बनें। इसके लिए भजन के भंडार की आवश्यकता नहीं है। हम 500 भजनों का भंडार किसलिए इकट्ठा करें? ॐ शब्द से भी संतोष मानना चाहिए। परंतु हमें इतने से संतोष नहीं हो सकता। इसलिए मन को अनेक दिशाओं से हटाने के लिए अलग-अलग रंग भर कर उसे अनुकूल होनेवाले ढंग से ईश्वर-दर्शन की बात भिन्न-भिन्न भजनों में कही गयी है।

भजन भी समझ में न आनेवाला हो तो, अथवा याद न रहा तो, धुन तो है ही। यह सब कर के हमने अपने आस-पास जाल रच रखा है, जिससे किसी भी प्रकार से सारे दिन हम इससे बाहर न निकल सकें। जिस प्रकार हमें एक ही वस्तु मिल जाये, वह इस भजन में मौजूद है – 'जैसे-तैसे कर के हरि को प्राप्त करें'। मन घास खाने को न जाये, परंतु अमृत ही पीये, इसके लिए उसके विरुद्ध रची हुई यह सेना है। विनोबा यहां आते हैं, तब किसलिए दिनभर गाते रहते हैं? वे जानते हैं कि उनमें त्रुटियां होती ही हैं, इसलिए उन्हें निकालने के लिए वे निरंतर भजन में रमे रहते हैं। उन्होंने योगारूढ का आदर्श नहीं अपनाया, उन्होंने तो विकारी से निर्विकारी बननेवाले अभ्यासी का आदर्श सामने रखा है।

२८-४-२६

'महादेवभाई की डायरी' से

ईशावास्योपनिषद

ये अविद्यां उपासते

निर्मला देशपांडे

पिछले श्लोक में आत्मज्ञानी, कविः मनीषी ... का वर्णन किया। उसके चित्त की ऐसी अवस्था बनती है कि वहां केवल आनंद ही आनंद होता है। हमको क्यों नहीं ऐसा आनंद प्राप्त हो सकता ? जरूर हो सकता है। उसके लिए क्या करना होगा ? आगे के छः मंत्रों में इसकी साधना बतायी है। तीन-तीन मंत्रों के दो अध्याय हैं। उसमें भगवान की दी हुई दो शक्तियों का उल्लेख है, जो हमारे पास हैं – एक है बुद्धि की शक्ति और एक है हमारे मन की शक्ति। इन दो देनों का हम कैसे इस्तेमाल करते हैं, इस पर बहुत कुछ निर्भर है। इसका अगर ठीक इस्तेमाल करेंगे तो हम भी आत्मज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं।

पहली चीज है बुद्धि। यह बहुत बडी देन है, जो हमारे हाथ में भगवान ने दी है, जिसका इस्तेमाल करने की अक्ल अगर हो तो इसी के सहारे हम कहीं से कहीं पहुंच सकते हैं। इस बुद्धि का उपयोग कैसे करें, उसके लिए कुछ जानना जरूरी होता है। तीन मंत्रों के अगले अध्याय में यही बताया है। उसका पहला मंत्र है –

अंधं तमः प्रविशन्ति
ये अविद्यां उपासते
ततः भूयः इव ते तमः
ये उ विद्यायां रताः

अंधं तमः – घोर अंधेरे में; **प्रविशन्ति** – प्रवेश करते हैं; **ये** – जो; **अविद्याम्** – अविद्या की; **उपासते** – उपासना करते हैं; **ततः भूयः इव** – उससे भी अधिक; **ते** – वे; **तमः** – अंधेरे में; **ये** – जो; **विद्यायाम्** – विद्या में; **रताः** – रममाण हैं।

यह तीन मंत्रों का अध्याय है। इसमें विद्या और अविद्या, इन दो शब्दों को जानना जरूरी है। इस मंत्र में ऐसी अजीब बातें कही हैं कि हम तो हैरान रह जायेंगे। कहा है – **अंधं तमः प्रविशन्ति** – घोर अंधेरे में प्रवेश करते हैं। कौन ? **ये अविद्यां उपासते** – जो अविद्या की उपासना करते हैं, जो अविद्या में डूबे हुए हैं, जो अज्ञानी हैं वे घोर अंधेरे में जाते हैं। लेकिन अब जानने की बात और आगे है। **ततः भूयः इव ते तमः ये उ विद्यायां रताः**। वे उससे भी अधिक घोर अंधेरे में प्रवेश करते हैं जो विद्या में रममाण हैं। जो विद्या के पीछे पडे हैं वे और घोर अंधेरे में जाते हैं। यह अजीब बात है। हम समझते हैं कि प्राप्त करने की चीज विद्या है। सब लोग यही जानते हैं कि विद्या प्राप्त करनी है। लेकिन ईशावास्य उपनिषद कह रही है कि विद्या के पीछे, केवल विद्या के पीछे पडेंगे तो और घोर अंधेरे में जायेंगे। ऐसा संसार के किसी दूसरे ग्रंथ में नहीं है। मैंने तो पढा नहीं है, लेकिन संसार के समस्त धर्मग्रंथ और समस्त दर्शनों के ग्रंथों का जिन्होंने अध्ययन किया है, उन्होंने हमसे कहा कि यह जो ईशावास्य की चीज है वह संसार के किसी भी ग्रंथ में नहीं है। यह एक अद्भुत चीज बतायी है। जीवन के लिए यह बडा मार्गदर्शन है। यह विशेषता है 'ईशावास्य' उपनिषद की।

कोरे कागज पर लिखना आसान होता है। लेकिन जिसमें बहुत भरा हुआ है ऐसे कागज में लिखा नहीं जाता। जिनका चित्त कोरे कागज जैसा है,

जो कुछ भी नहीं जानते हैं, शायद नया विचार ग्रहण करने की क्षमता उनमें अधिक रहती है। अनुभव यही आता है। जानने की बात इसमें यह है कि केवल अविद्या और केवल विद्या, दोनों नुकसान करनेवाली हैं। इसका अर्थ यह कि अविद्या भी चाहिए, विद्या भी चाहिए। दोनों चाहिए। दोनों मिल कर आत्मज्ञान की तरफ ले जानेवाली हैं। अविद्या से भी बडे लाभ होते हैं। अविद्या यानी अज्ञान, यह उसका सीधा अर्थ है। यह बताइए कि स्वास्थ्य किसका अच्छा रहता है? बहुत पढी-लिखी बहन का या गांव की अनपढ बहन का? साफ बात है। अविद्या का बडा लाभ यह कि उससे स्वास्थ्य अच्छा रहता है। यानी प्राणशक्ति-संचय अनपढ व्यक्ति के पास अधिक रहता है। यह एक लाभ। अविद्या का दूसरा लाभ देखिए। अहंकार किसको ज्यादा होता है? विद्यावाले को या अविद्यावाले को? सही बात है, अज्ञानी को अहंकार कम रहता है। अहंकार ऐसी चीज है जो अध्यात्म-साधना में सबसे बडा बाधक है। जो मूर्ख ही है, काला अक्षर भैंस बराबर, उसके लिए तो अहंकार का कोई खास कारण नहीं रहता है। इसलिए शायद वह जल्दी भगवान के पास पहुंच सकता है, बनिस्बत विद्वान महाशय के। विद्वान और मांझी की कहानी प्रसिद्ध है। एक बहुत बडे विद्वान थे, अनेक शास्त्रों के ज्ञाता। दर्शन, साइंस, गणित, संगीत आदि न जाने क्या-क्या, सबके जानकार थे। एक बार वे नदी पार कर रहे थे, नाव में बैठ कर, तो मांझी से बात करने लगे। 'क्यों मांझी-भैया, दर्शनशास्त्र जानते हो?' 'जी नहीं, यह नाम भी नहीं सुना मैंने,' मांझी ने कहा। 'दर्शनशास्त्र नहीं जानते तो तुम्हारी चार आने जिंदगी व्यर्थ गयी,' विद्वान ने कह दिया। फिर थोडी देर बाद कहा, 'क्यों मांझीभैया, साइंस जानते हो?' 'नहीं महाराज, हमको तो मालूम ही नहीं, नाम ही मालूम नहीं।' 'तो तुम्हारी आठ आने जिंदगी खत्म।' 'क्यों मांझीभैया, गणितशास्त्र जानते हो?' 'नहीं।' 'तुम्हारी बारह आने जिंदगी खत्म। किसलिए तुम मनुष्य बने? खाली नाव खेने के लिए?' फिर थोडी देर बाद तूफान आया। नाव डगमगाने लगी। मांझी ने पूछा विद्वानमहाशय से, 'तैरना जानते हैं?' उन्होंने कहा, 'नहीं।' 'आपकी सोलह आने जिंदगी खत्म। मेरी तो बारह ही आने खत्म

थी, आपकी तो सोलह आने खत्म, मल्लाह ने कहा।

सोचने की बात यह है कि अविद्या से बहुत लाभ होता है। इसलिए कुछ अविद्या भी चाहिए, कुछ विद्या भी चाहिए। ईशावास्य उपनिषद वह एक पते की बात बता रहा है। केवल अविद्या रही तो जितने घोर अंधेरे में जायेंगे उससे ज्यादा घोर अंधेरे में जायेंगे केवल विद्या से।

अविद्या से क्या-क्या लाभ हैं? एक लाभ है प्राणशक्ति-संचय। दूसरा लाभ है, अहंकार कम होता है, नम्रता आती है। यह बहुत बडा गुण है। जो नम्र है वही अध्यात्म-साधना में सबसे पहले आगे बढ सकता है। विद्वान में नम्रता कम से कम होती है। लेकिन, इसलिए पढना-लिखना छोड दें ऐसी बात नहीं। विद्या का भी लाभ है। विद्या से बौद्धिक दिशादर्शन मिलता है। किधर जाना है, यह विद्या बताती है। मान लें, बीमार की सेवा करनी है। डॉक्टर ने दो दवाइयां दी हैं। एक है मालिशवाली और एक है पिलानेवाली। अगर हम मूर्ख होंगे, हमें ज्ञान ही नहीं है, विद्या नहीं है तो संभव है मालिशवाली दवा पिला दें और पिलानेवाली दवा की मालिश कर दें और बीमार को सीधे स्वर्ग पहुंचा दें। इसलिए विद्या तो चाहिए, दुनिया का काम चलाने के लिए विद्या आवश्यक है। लेकिन कौनसी और किस प्रकार की विद्या? हमको इसकी तरफ ध्यान देना है।

पहले एक बात यह ध्यान में लेनी है कि केवल अविद्या और केवल विद्या, दोनों नुकसान करनेवाली हैं। इसलिए कुछ विद्या भी चाहिए कुछ अविद्या भी चाहिए। रात को आठ घंटे हम क्या करते हैं? बडे से बडा भारी विद्वान भी रात के आठ घंटे क्या करता है? सबका अविद्या का ही कार्यक्रम चलता है। इतना, अविद्या का कार्यक्रम न चले तो उनकी बाकी 16 घंटे की विद्या चलेगी नहीं। तो अविद्या जरूरी है। सबके लिए जरूरी है। लेकिन वह अविद्या आठ घंटे के बजाय दस घंटे चलती रहे तो फिर नुकसान करेगी।

प्रश्न यह है कि अविद्या चाहिए तो वह कौनसी चाहिए? जो अविद्या हमको आत्मज्ञान की तरफ ले जायेगी वह। इसलिए कहते हैं,

अन्यत् एव आहुः विद्यया
अन्यत् आहुः अविद्यया
इति शुश्रुम धीराणाम्
ये नः तत् विचचक्षिरे

अन्यत् – भिन्न; **एव** – ही; **आहुः** – कहा है; **विद्यया** – विद्या से; **अन्यत्** – भिन्न; **आहुः** – कहा है; **अविद्यया** – अविद्या से; **इति** – ऐसा; **शुश्रुम** – सुना है; **धीराणाम्** – धीर पुरुषों से; **ये** – जो; **नः** – हमें; **तत्** – वह; **विचचक्षिरे** – दर्शन कराया।

जिसको हमें पाना है, वह है आत्मज्ञान। विद्या साधन है, साध्य नहीं। साध्य है आत्मज्ञान। इसका विस्मरण हो जाता है जीवन में। वह आत्मज्ञान विद्या से भी भिन्न है, अविद्या से भी भिन्न है। वह तीसरी ही चीज है।

ऋषि से आप पूछेंगे, "आपको कैसे पता चला ?" तो ऋषि कहते हैं, **इति शुश्रुम धीराणाम्** – ऐसा हमने धीर पुरुषों से सुना है। ईशावास्य लिखनेवाले ऋषि हमसे कह रहे हैं कि हमने अपने गुरुओं से ऐसा सुना है। क्या सुना ? यही कि जो प्राप्त करना है वह आत्मज्ञान है और विद्या-अविद्या उसके साधन हैं।

धीर शब्द के दो अर्थ हैं। एक है धीमान, बुद्धिमान, और दूसरा है धृतिमान। इसका अर्थ यह कि बुद्धि और धृति, दोनों चाहिए। बगैर धृति के चलेगा नहीं। बगैर बुद्धि के भी काम नहीं चलेगा। बुद्धि भी चाहिए, धृति भी चाहिए। धृति कहते हैं धारण करने को, टिकने की शक्ति को। 'पेशन्स' भी कह सकते हैं, 'पर्सिवियरेन्स' भी कह सकते हैं। उसका ठीक अनुवाद नहीं होता है। धृति-शक्ति और बुद्धि-शक्ति, दोनों चीजें जिसमें हैं वह धीर है। तो ऐसे धीरों से उस ऋषि ने सुना है। भारत में श्रवण की परंपरा चली आयी है। ज्ञान की परंपरा कैसे चलती थी ? गुरु अपने शिष्य को सुनाते थे। शिष्य सुनते थे। मनन करते थे। अध्ययन करते थे। फिर वे अपने शिष्यों को सुनाते थे। इस तरह से भारत में श्रवण की परंपरा से ज्ञान चला आया। हरएक देश की अपनी-अपनी परंपरा होती है। अपने यहां जो विद्वान हैं उनको 'बहुश्रुत' कहते

हैं। बहुश्रुत यानी जिसने बहुत सुना है। अंग्रेजी में 'वेलरेड' कहते हैं, जिसका अर्थ है बहुत पढा हुआ। वहां पढने की परंपरा थी। अपने यहां सुनने की। ये ज्ञानी लोग गांव-गांव घूमते थे। साधु, संन्यासी, फकीर सब भ्रमण करते थे। भजन करते थे। कीर्तन करते थे। ज्ञान-प्रवचन करते थे। उससे ज्ञान-प्रचार होता था। यह भारत में चला आया है।

इसमें एक पते की बात समझने की है। 'ऐसा हमने सुना है', यह कौन कह रहा है? ईशावास्य का ऋषि। ईशावास्य का काल कम से कम आज से 5000 साल पहले का होगा। और वे कहते हैं कि हमने बहुत पहले से सुना है। यानी इस देश में ज्ञान की परंपरा कितनी प्राचीन है! गुरुदेव ने कहा है – **प्रथम प्रभात उदित तब गगने। प्रथम सामरब तब तपोबने** – पहला ज्ञान का प्रभात भारत में उदित हुआ। सामवेद की ध्वनि पहले यहां के तपोवनों में प्रकट हुई। ज्ञान का प्रभात पहले इस देश में हुआ यह अभिमान की बात नहीं, एक वास्तविकता है। लेकिन आज क्या हालत है? जहां ज्ञान का प्रथम प्रभात हुआ, आज उसी देश में इतना घोर अज्ञान फैला हुआ है जिसकी कोई सीमा नहीं। यह हमारे लिए एक चुनौती है। ऋषि कहते हैं कि मैंने अपने गुरुओं से पहले से सुना है। केवल सुना नहीं है, अनुभव भी किया है। क्योंकि वे कहते हैं, **ये नः तत् विचचक्षिरे** – यानी हमें जिन्होंने दर्शन कराया, अनुभव कराया। यह खाली सुनी हुई बात नहीं है, उसका अनुभव साक्षात्कार हुआ है। सुनने-सुनानेवाले गुरु बहुत मिलते हैं, लेकिन उनको ऐसे गुरु मिले थे जिन्होंने अनुभव कराया।

रामकृष्ण परमहस की कहानी है। रामकृष्णदेव वेदांत पर बहुत कुछ कहते रहते थे। तो एक बार स्वामी विवेकानंद ने कहा कि आप सुनाते हैं, हम सुनते हैं, लेकिन अनुभव कहां हो रहा है? एक बार तो अनुभव कराइए। फिर ऐसी कहानी है कि विवेकानंद ने रामकृष्णदेव के चरण छुए और चरण छूते ही उन्हें वह अनुभूति हो गयी, जिसके बारे में वे हमेशा सुनते रहे। तो सच्चा गुरु वह है जो अनुभव कराता है, केवल सुनाता नहीं है।

'विचचक्षिरे' में 'चक्ष्' धातु है, जिससे चक्षु (आंख) शब्द बना है।

उसका अर्थ है अनुभव कराया, दर्शन कराया, साक्षात्कार कराया। ईशावास्य के ऋषि कहते हैं कि हमारे गुरुओं से हमने केवल सुना नहीं, उन्होंने हमको अनुभव कराया। हमारे जीवन में वह चीज आ गयी जो प्राप्त करना है, और वह है आत्मज्ञान।

उसका एक साधन विद्या है, एक साधन अविद्या है। इसका हमें अधिकतर विस्मरण हो जाता है। इसी लिए जो बुद्धि की शक्ति भगवान ने हमको दी है, उसका हम ठीक उपयोग नहीं करते। दुनिया में सबसे ज्यादा अनर्थ करनेवाला, एटम् बम हमारे जैसे मूर्खों ने नहीं, विद्वानों और बुद्धिमानों ने पैदा किया। जिनके पास भगवान ने बुद्धि की बहुत बडी देन दी थी, उन्होंने उस बुद्धि का इस्तेमाल विनाश के मार्ग में किया। दुनिया में शोषण होता है। अन्याय होता है। सबसे ज्यादा किसके द्वारा होता है? जो ज्यादा अक्लवाले होते हैं, उनके ही द्वारा होता है। मूर्ख लोग ज्यादा शोषण नहीं करते हैं, दुनिया का ज्यादा नुकसान नहीं करते हैं। बुद्धि का गलत इस्तेमाल करेंगे तो जो हमको बडी चीज मिली है, वह हमको घोर अंधेरे में ले जायेगी। इसलिए ईशावास्य कहता है कि बुद्धि का ठीक उपयोग करो। वही विद्या प्राप्त करो, जो तुमको आत्मज्ञान की तरफ ले जायेगी।

जो गुस्से को इस तरह दिल में रखता है, मानो वह कोई बहुमूल्य पदार्थ हो, वह उस मनुष्य के समान है, जो जोर से अपना हाथ जमीन पर दे मारता है; इस आदमी के हाथ में चोट लगे बिना नहीं रह सकती और पहले आदमी का सर्वनाश अवश्यंभावी है।

– 'तमिल वेद' — तिरुवल्लुवर

कौन गाता आ रहा है
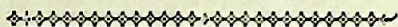
हो उठा पागल हृदय कौन गाता आ रहा है
यह नहीं वह, भ्रांति है सखि, जो कि प्रतिदिन छल रही है
तनिक रोको उसे, कोई आत्मा कुछ कह रही है
कौन वापू की मुरलिका को वजाता आ रहा है
कौन गाता आ रहा है

चल चुके थे, तनिक वढ कर डिग गया विश्वास अपना
जग चुके थे किंतु जग कर भी वनाया सत्य सपना
कौन शंका को अटल श्रद्धा वनाता जा रहा है
कौन गाता जा रहा है

कौन यह संतुष्ट है जो आज निज सर्वस्व दे कर
जगमगाती नाव पर वह कौन नन्हा दीप ले कर
जगमगाते, राष्ट्रवालों को जगाता आ रहा है
कौन गाता आ रहा है

वायुयानों धूम्रयानों और विद्युत यंत्र के बल
वह विचारों से विनत शिर, पांव चल कर ही सुदुर्बल
सभ्यता की दौड में सवको हराता जा रहा है
कौन गाता आ रहा है

आज उनके सत्य पथ पर हमें चलने दो अकेला
तुम लगा रहने यहीं दो यह सुराजों का सुमेला
सत्य का जादू अजाने ही ममाता जा रहा है
कौन गाता जा रहा है

— विद्यावती कोकिल
श्रीअरविंद आश्रम, पोंडीचेरी

卐

भारत तो गांधी का देश है

पृथ्वीसिंह झाला

भारत की उत्तरी सीमा से हजारों मील दूर, दो दुनिया को जोडनेवाला भूमध्म समुद्र है। इस समुद्र के बीच इटली देश का मानो सब ओर से उपेक्षित और कंगाल सिसली द्वीप है। इसी द्वीप पर बसे एक छोटे गांव की यह कहानी है।

इस गांव के एक छोटे मकान में आधी रात के समय एक छोटी-सी मेज पर महात्मा गांधी का छायाचित्र रखा हुआ था। उसे फूलों का हार पहनाया गया था। पास ही एक छोटा दिया जल रहा था। मेज के पास घुटनों के बल बैठी एक अधेड उम्र की स्त्री प्रार्थना कर रही थी। उस स्त्री का नाम था जूलियाना।

वह दिन गांधीजी की जयंती का दिन था। सिसली के उस गांव में घटी यह एक सच्ची घटना है। दूसरे युद्ध के चलते इटली की उस सुशिक्षित ग्रामीण महिला जूलियाना का पुत्र युद्ध में मारा गया था। उस समय जूलियाना की उम्र 35 साल की थी। पुत्र ही उसके जीवन का एकमात्र आधार था।

जूलियाना हक्की-बक्की रह गयी। सूर्य का प्रकाश अंधकार में बदल गया। उसके लिए जीवन असह्य बन गया। उसने घर बेच डाला। खेत बेच डाला। गांव के एक छोर पर छोटी-सी झोंपडी बना कर वह उसमें रहने लगी, फिर भी उसे जीवन में स्वस्थता अथवा शांति के दर्शन नहीं हो पाये। वह अपनी झोंपडी की खिडकी के सामने फैले अनंत सागर पर लोटनेवाले घने अंधेरे को देखने में अपनी रातें बिताने लगी। नींद उसकी दुश्मन बन चुकी थी।

जूलियाना की भलमानसता की और उसके मानवीय गुणों की महक समूचे सिसली द्वीप पर फैल चुकी थी। उससे आकर्षित हो कर एक दिन इटली के गांधी कहे जानेवाले साधुपुरुष डोनाल्ड जूलियाना के दरवाजे पहुंचे।

जूलियाना ने उनका स्वागत किया। आसन बिछा कर उन्हें उस पर

सम्मानपूर्वक बैठाया । बाद में दुनिया की, जीवन की, जीवन के विविध प्रश्नों की और सिसली के गरीब लोगों के दुःखों की बातें होती रहीं ।

इस बातचीत के चलते इटली के गांधी ने हिंद के गांधी की चर्चा की । जूलियाना को याद हो आया कि उसने रोमांरोलां के एक लेख में हिंदुस्तान के गांधी के बारे में पढा था । साधु डोनाल्ड ने जूलियाना को सुझाया कि वह गांधीजी की पुस्तकें पढे । जूलियाना ने उसे स्वीकार किया ।

एक अजब रीति से जूलियाना के जीवन में शांति फिर लौटने लगी । उसे नयी जीवन-दृष्टि मिली । गांधी का यह तत्वज्ञान कि अहिंसा और सत्य जीवन को सार्थक बनाते हैं, उसके जीवन में संचरित होने लगा । जूलियाना ने दस सालों तक गांधी-साहित्य की उपासना की । फलस्वरूप उसे लोकसेवा की लौ लगी और उसका जीवन फिर लहलहा उठा । उसने साधु डोनाल्ड के साथ, बेकारी के कारण भुखमरी का सामना करनेवाले स्त्री-पुरुषों को सडक बनाने की मजदूरी दिलाने के सेवा-यज्ञ में अपनी सेवा देनी शुरू की । इटली में रोजी कमाने के लिए बेकार लोगों से सडक-निर्माण का कठिन काम करवाना गैरसरकारी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए अपराध माना जाता है । इस अपराध के लिए डोनाल्ड को जेल की सजा दी गयी । उनके बाद साध्वी जूलियाना को भी कारागार में बंद कर दिया गया ।

जेल-जीवन पूरा हुआ । जूलियाना अपनी कुटिया में वापस आयी और फिर लोकसेवा के अपने कामों में जुट गयी ।

दो साल पहले की बात है । योरप में विद्याध्ययन करनेवाला और गरमी की छुट्टियों में भूमध्य समुद्र में नाव की सैर पर निकला एक भारतीय युवक सिसली के पास नाव में बैठा घूम रहा था । अचानक ही समुद्र में जोर का तूफान उठा । पहाडों जैसी ऊंची लहरें उछलने लगीं । रात पड चुकी थी । तूफान का जोर घटा और शुक्ल पक्ष की अष्टमी के उजाले में बेहोश नौजवान के साथ नाव टकराती-टकराती जूलियाना के गांववाले किनारे पर आ कर रुक गयी । कुछ समय के बाद नौजवान थोडा हिला-डुला । उसे होश आ गया। रातभर कहीं ठहरने के लिए वह गांव में किसी हॉटेल या धर्मशाला की खोज

करने निकला । [illegible] सिसली के छोटे-से गांव में होटल या धर्मशाला तो कहां से होती ? आखिर वह नौजवान साध्वी जूलियाना की कुटिया के पास आ कर खडा हो गया । उसने हिम्मत कर के दरवाजा खटखटाया । प्रार्थना में बैठी जूलियाना ने खडी हो कर दरवाजा खोला । नौजवान ने माफी मांगी । उसने अपनी आपबीती कह सुनायी और रात बिताने के लिए कोई जगह देने की बिनति की ।

जूलियाना उस नौजवान को देखती रही । किसी अगम्य रीति से उसे लगा कि यह तो कोई भारतवासी है । जूलियाना ने नौजवान से पूछा – "आप कहां से आ रहे हैं ?... किस देश के हैं ?" नौजवान ने जवाब दिया – "मैं जर्मनी के . . . विश्वविद्यालय में पढता हूं । मेरे देश का नाम भारत है ।"

जूलियाना के होंठ खुले और वह धीमी आवाज में भक्तिभाव से बोली – "भारत तो गांधी का देश है ! आओ, नौवजान आओ, मेरे घर में ही रात रहो । पूरी सुविधा देनेलायक जगह तो इस कुटिया में है नहीं, लेकिन हम जैसे-तैसे रात तो अच्छी तरह बिता ही देंगे । गांधी के देश का मनुष्य मेरे घर का अतिथि बना है, इससे आज मैं अपने को बहुत सम्मानित मानती हूं ।"

जूलियाना ने नौजवान को एक बडा कटोरा भर कर दूध दिया और फिर विरल श्रद्धा से प्रेरित हो कर उसने अपने मेहमान को वह सारी कथा कह सुनायी, जिसके फलस्वरूप गांधी के नाम से उसे नया जीवन प्राप्त हुआ था । मीठी नींद से घिर रही जूलियाना की आंखें अपनी कृतार्थता के क्षणों में कृतज्ञ-भाव से गीली हो आयी थीं ।

– गुजराती 'लोकजीवन' से

सर्वोदयं निरंतं तीर्थम्

शिवाजी भावे

22वां सर्वोदय-समाज-सम्मेलन स्वागत-भाषण

* *

ॐ पूर्णं अदः । पूर्णं इदं । पूर्णात् पूर्णं उदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णं आदाय । पूर्णं एव अवशिष्यते ।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

अभी आज से यहां पवनार में, ब्रह्मविद्या-मंदिर के प्रांगण में सर्वोदय सम्मेलन होने जा रहा है। इसी लिए आप सब लोगों ने समूचे भारतभर से, जगह-जगह से यहां भक्तिभाव से आ कर हमें उपकृत किया है। यह बडी हर्ष की बात है। मैं आप सबका स्वागत-समिति की तरफ से, ब्रह्मविद्या-मंदिर की तरफ से, वर्धा की अनेक शिक्षा-संस्थाओं की तरफ से और पवनार की ग्रामीण जनता की तरफ से हार्दिक स्वागत करता हूं।

यह ब्रह्मविद्या-मंदिर का, वर्धा का, पवनार का, परिसर स्वातंत्र्यकाल के पूर्व से आज तक स्वदेश और अन्य देश के सज्जनों का, संतों का स्वागत करने में कैलासवासी जमनालालजी की अध्वर्युता में हमेशा अग्रसर रहा है। महाराष्ट्र-संत तुकाराम ने **साधु-संत येती घरा। तो चि दिवाळी दसरा** – यानी साधु-संत घर आते हैं वही दीपावलि है और दशहरा है – ऐसी सिखावन हमें दी है। यहां के शासक-पक्ष के लोगों ने और महाराष्ट्र के मुख्यमंत्रीजी ने भी इसी सिखावन का केवल आज ही नहीं, हमेशा ही अनुसरण किया है। यहां का प्रदेश, यानी वर्धातट का प्रदेश, परम पवित्र रुक्मिणीमाता का अपना खास प्रदेश है। रुक्मिणीमाता का मातृवात्सल्यबोध, आत्मीयता का स्वागत-बोध यहां के जमीन के कण-कण में, यहां के धामनदी के जल के बिंदु-बिंदु में, यहां के वृक्षों के पत्ते-पत्ते में, यहां के मंदिर-मंदिर की ईंट-ईंट में प्रस्फुरित होता आया है। इतनी स्वागत की सहज-सिद्धता होने के कारण, हमारी

कमियों का भान होते हुए भी, हम आप सब लोगों का फिर-फिर से नम्रता से स्वागत करने में बडा हर्ष और गौरव महसूस करते हैं।

आप सबका दर्शन साक्षात् परमात्म-दर्शन जैसा ही है, आप सबका दर्शन सर्वोदय का ही व्यापक और भव्य दर्शन है। लेकिन सबसे बडी बात यह है कि, आप सबका दर्शन अत्यंत आत्मीय पावन प्रियदर्शन है। **अमृतं प्रियदर्शनम्** – संस्कृत में कहावत है। इस कहावत को ध्यान में लेते हैं तो सर्वोदय दर्शन, यानी अमृतमय सामूहिकता का व्यापक सेवादर्शन है, यह तत्त्व हाथ में आता है।

इस सर्वोदयतत्त्व का बहुत मार्मिक और उद्बोधक स्पष्टीकरण, करीब हजार साल पहले जैनों के साधु समणभद्रमुनि ने हमारे सामने प्रस्तुत कर रखा है। उन्होंने कहा है,

सर्वापदामंतकरं निरंतम्
सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव

सब आपदाओं का अंत करनेवाला ऐसा यह निरंत सर्वोदयतीर्थ है। इस तरह का इसका स्पष्टीकरण है। कोई भी आपदा यानी आपातस्थिति हो, राजनैतिक आपातस्थिति हो, सामाजिक आपातस्थिति हो, या आर्थिक आपातस्थिति हो, सर्वोदय उसका अंत करने में समर्थ है। क्योंकि वह निरंत है, उसका अंत नहीं है। वह अमर है। सर्वोदय अमर है उसका मूलकारण सर्वोदय एक अत्यंत पवित्र तीर्थ है। तीर्थ यानी पावन करनेवाला, जहां हिंसा का लेशमात्र भी संबंध रहता नहीं वही सर्वोदयतीर्थ है।

समणभद्रमुनि का यह कथन आज भी लागू होता है। इसी कारण पू. बापूजी ने, महात्मा गांधी ने सर्वोदय शब्द हमारे सामने रखा। समणभद्र-मुनि का शब्द उन्होंने लिया ऐसी बात नहीं है। पू. बापूजी को यह शब्द रस्किन् के 'अंटु धिस लास्ट' किताब से प्राप्त हुआ। 'अंटु धिस लास्ट' का भावार्थ है अंत्योदय। जो सबसे आखिर हैं, पददलित हैं, हरिजन हैं, गिरिजन हैं, कुष्ठरोग जैसे रोगों से पीडित हैं, अज्ञानांधकार में, दुःखदारिद्रय में फंसे हैं, व्यसनों से ग्रस्त हुए हैं, उनकी सेवा करना, यही अंत्योदय है। प्राणिमात्र की सेवा करना, गोमाता की सेवा करना, ग्राममाता की सेवा

करना, मानवसमाज की सेवा करना, वृषभदेव की सेवा करना, कृषकदेव की सेवा करना, बहनों को, बालकों को, ग्रामीणों को आत्मीयता से आगे बढाना अंत्योदय का कार्य है। यह सब कार्य पू. बापूजी ने खुद कर के हमारा पथप्रदर्शन किया।

सर्वोदय के इस पथप्रदर्शन से शासनावलंबन और शासनपारतंत्र्य नष्ट होगा। स्वावलंबन और आत्मानुशासन सिद्ध होगा। ग्रामस्वराज्य और रामराज्य की प्रस्थापना होगी, ऐसी पू. बापूजी की जीवनदृष्टि थी। अगर इस जीवनदृष्टि के अनुसार हम चलेंगे तो महाराष्ट्रसंत ज्ञानेश्वरमहाराज की उक्ति सफल होगी।

किंबहुना सर्व सुखी। होऊनि तीन्ही लोकीं
भजिजो आदिपुरुखी। अखंडित

मतलब यह कि त्रैलोक्य सब सुख से पूर्ण हो कर आदिपुरुष भगवान का अखंडित भजन करे।

इन क्रिसमस के, नाताल के मंगल दिनों में फिर एक बार आप सब लोगों का, हार्दिक अभिनंदन और स्वागत कर के हमारी स्वागत-समिति के आत्मनिरीक्षण के लिए, और सबके मांगलिक के लिए प्रार्थना कर के समाप्त करेंगे।

कस्यचित् किमपि नो हरणीयं
मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम्
श्रीपतेः पदयुगं स्मरणीयं
लीलया भवजलं तरणीयम्।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

जागो, काम में लगो

रे. कैथान

22वां सर्वोदय समाज सम्मेलन:
अध्यक्षीय भाषण

मुझे आपने एक बडी जिम्मेदारी का काम सौंपा है और मैंने बिना सोचे-समझे उसे स्वीकार करने की हिमाकत की है। आज सारी दुनिया के सभी हिस्सों में इमरजन्सी का बोलवाला है। हम जब कोशिश में लगे हैं कि एक मानवता, 'जय जगत्' को सिद्ध करें, हमें और रुकावटें खडी नजर आ रही हैं। भारत में हमने एक ऐसा हल या रास्ता खोज निकाला है, जो यदि संसार ने कबूल किया तो उसे एक नये मानवतावादी समाजरचना की ओर ले जानेवाला सिद्ध होगा। अफसोस है कि हमारे नेता गांधीजी आज हमारे बीच नहीं हैं। वे सदियों तक हमारे लिए प्रकाशस्तंभ बने रहनेवाले हैं। पर खुशी की बात है कि विनोबाजी हमारे बीच हैं और उन्होंने हमें इस अद्‌भुत तीर्थयात्रा में आगे बढाने में महान मदद की है। स्पष्ट है कि जब हम ग्रामदान द्वारा ग्राम-स्वराज्य का एक नक्शा अंकित करते हैं, तो पूरा का पूरा रचनात्मक कार्य हमारे सामने आ जाता है। यह कितनी बडी चुनौती है! मुझे इस मामले में कोई नयी बात कहने जैसी नहीं है, पर आज के संदर्भ में इस दिशा में कौनसी विशेषता है, उसी पर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं।

इस बारे में मैंने कई मित्रों से सुझाव मांगे थे। उनमें से एक ने लिखा, 'ग्रामवासियों को परस्पर बांट कर खाने के सिद्धांत में शिक्षण देने की बात पर बल देना होगा।' मैं उसमें इतना ही बढा सकता हूं कि 'इसकी शुरुआत हम अपने से करें।' मेरे आदरणीय कार्यकर्ता-बंधु ने आगे लिखा है 'यह शिक्षण बातचीत के द्वारा और पदयात्राओं के माध्यम से होना चाहिए।' और मैं इस बारे में भी यही कहूंगा कि 'इसमें हमें नयी तालीम के सिद्धांत को अमल में लाना होगा।'

सामुदायिक जीवन हमारे कार्य का मूल बिंदु होना चाहिए। इसकी

शुरुआत सफाई से मानी जानी चाहिए । और गांव स्वच्छ रहे सबके सामूहिक प्रयास से, इसमें कोई नागा न हो और कोई पीछे न रहे ।

लोगों को रोजगार और धंधा मिले, इसके लिए खादी-ग्रामोद्योग का बडा महत्त्व है और इस क्षेत्र में भी खादी-ग्रामोद्योग-आयोग नाम की बडी संस्था कार्यरत है। हम उसके काम की होड न करें बल्कि गुणात्मक दृष्टि से जो गहराई प्राप्त की जानी चाहिए उसको सिद्ध करने में लगें । तभी जिन सिद्धांतों को हमने आधारभूत माना है उनको प्रतिष्ठा दिला पायेंगे । इस विषय में मुझे जे.सी.कुमारप्पा की याद आये बिना नहीं रहती । जिन आदर्श और सिद्धांतों को उन्होंने मगनवाडी में प्रतिपादित किया, उनको हमें मूर्तरूप देना होगा । कुमारप्पा स्वयं संस्था के दायरे से बढ कर ठेठ गांव में कार्य करने के पक्ष में थे और उन्होंने मगनवाडी छोड कर गांव में काम किया । ग्रामदान के कार्य में भी उन्होंने खेती के नैतिक और वैज्ञानिक पहलुओं पर जोर दिया था ।

सामाजिक न्याय के क्षेत्र में और भी बडी-बडी चुनौतियां हमारे सामने हैं – हरिजन-सेवा का सारा क्षेत्र उसका प्रतिनिधित्व करता है । मैं अपने हरिजन-सेवकों से लगातार यह बात दोहराता हूं कि राहत के जो कार्य हरिजन बंधुओं के लिए सरकार कर रही है, हम मदद भले ही दें, पर अपने को उन्हीं में न फंसा लें । हमारा काम तो समाज-परिवर्तन का है और इस रूप में हरिजन-सेवा का अर्थ होगा जाति के भेदों को मिटायें, सवर्णों की हरिजनों के प्रति जो वृत्ति है उसमें परिवर्तन लायें । हम अपने को जो सवर्ण हैं वे सवर्ण मानना छोड दें और हरिजन मानें, अपने को उनके साथ एक बना दें । आज भी सरकार जो सहायता आदि के नियम हरिजनों की भलाई के लिए बनाती है, उन पर अमल करने में रोडे अटकानेवाले गांव के समर्थ सवर्ण ही होते हैं । जो भूमि बे-जमीनों को, विशेषतः हरिजनों को दी जाने के लिए रखी थी, उसका भी लाभ सवर्ण लोगों ने लिया, यह कई जगह देखने में आया है। यह दूर करना हो तो सवर्णों को उनके पीडित भाइयों की मदद के लिए आना होगा ।

स्त्री-शक्ति के विषय का महत्त्व भी हमें समझना चाहिए। इस बारे में जितना कार्य हमें करना चाहिए और ताकत लगानी चाहिए, वह हम नहीं कर

पाये हैं। हमारी बहनों ने इस कर्तव्य की पूर्ति के लिए जो कार्य किया है, वह अभिनंदनीय है, परंतु उतना काफी नहीं है। हमारी स्त्री-कार्यकर्ता अपने-अपने क्षेत्र में सेवा के काम के साथ-साथ स्त्री-शक्ति-जागरण का भी काम माताओं और बहनों के बीच कर रही हैं, पर उसमें प्रेरणा का स्रोत पवनार का ब्रह्मविद्या-मंदिर है। इस प्रकार के केंद्र देश में अन्य स्थानों पर भी यदि हम खडे कर सकें तो उसका बहुत बडा लाभ होगा। सचमुच ही यह एक ऐसा पहलू है, हमारे काम का, जिसके बारे में पूरी तरह से ध्यान दिया जाना जरूरी है। स्त्री-पुरुष अभेद वृत्ति को बढाते हुए स्त्री-शक्ति-जागरण का काम पूरा किया जाये।

सारे ही ग्रामस्वराज्य के कार्य की बुनियाद अंततः गांव-गांव में लोक-सेवकों की जमात पैदा करने पर निर्भर है। आम लोगों में से लोक-सेवक निकालने और बनाने के लिए विचार और निष्ठा का काफी पोषण हमें प्रदान करना होगा। इसके लिए हमारे कार्यकर्ताओं को ग्राम-जीवन के साथ समरस होना होगा। दूर रह कर हम गांववालों को नहीं समझा सकेंगे। जब कार्यकर्ता गांववालों के बीच रहेगा तभी वह गांव के लोगों से सीख सकेगा। उनके गुणों का विकास करने में सहायक हो सकेगा और लोक-सेवक पैदा करने में मददगार होगा। हमें समझना होगा कि हर गांव में अपना वैशिष्टय होता है। उस वैशिष्टय का विकास कैसे करें यही कार्यकर्ता का काम है। हर गांव इस बारे में एक नया सबक हमें सिखा सकता है। ग्रामजीवन के विकास के ऐसे सब अनुभव एक-दूसरे के साथ आदान-प्रदान करने का मौका यह सम्मेलन हमें देता है और इस जानकारी के आधार पर हम अपने अगले कदमों को ठीक दिशा प्रदान कर सकेंगे।

शायद हमारे बीच में जो परस्पर-भिन्नता का भाव पैदा हो जाता है, उसका भी उपाय ग्राम-कार्य में मिल सकेगा। यदि हमारे काम का क्षेत्र गांव में रह कर गांव की सेवा करने का और हमारी सभी संस्थाओं के मुख्य स्थल और उनके मुख्य कार्यकर्ताओं के स्थान गांव में होंगे, जहां आम भारतीय के जीवन के साथ एकरस हो कर रहने का मौका मिलेगा, तो यह परस्पर का

भेदभाव भी स्वयं दूर हो जायेगा। इस कार्य में जो समस्याएं हमारे सामने आयेंगी और उनके हल में हमें अपनी शक्ति और बुद्धि लगानी पडेगी वह दूसरे किसी मामले में हमें उलझने नहीं देंगी।

गांव में दूसरी बात तालीम की है, जिसके क्षेत्र में गांधीजी की बतायी राह हम नहीं पकड पाये हैं। एक प्रशिक्षित मास्टर होने के नाते मेरी इस मामले में गहरी दिलचस्पी रही है, और है। आज हमारे कार्य में इसकी बडी कमी है। शायद ही कोई गांव होगा, जहां हम दिखा सकें कि नयी तालीम का स्वरूप क्या हो। हमारी बालवाडियों में और बालशिक्षिकाओं के प्रशिक्षण में नयी तालीम के सिद्धांतों को प्रारंभ करना होगा। एक तरह से एक नयी मुहिम ही नयी तालीम के लिए देश में शुरू करना होगा।

आज की विशेष परिस्थिति में सर्वोदय-कार्यकर्ताओं की भूमिका क्या होनी चाहिए? इसी पर हमें खास तौर पर सोचना होगा। क्या विशेष स्थलों पर गहरा काम करने की योजनाओं पर ध्यान केंद्रित करना उचित होगा? सबकी संचित शक्ति का उपयोग कर के एक नमूना हम पेश करने का प्रयास करें, जो सारे देश को बदलने में जामन का काम कर सके। ऐसे रचना के कार्यक्रमों के नमूने खडे करने के साथ इधर ध्यान खींचने की इच्छा होती है कि यहां विशिष्ट समस्याएं सामाजिक-आर्थिक न्याय की है, उनसे भी हम मुंह न मोडें। दक्षिण में मठों के स्वामित्व में खेती की जमीनों की समस्या है, जिसको ले कर हमारे साथियों ने काफी प्रयास किया। इसी प्रकार की तात्कालिक ज्वलंत समस्याओं के बारे में भी हमें उतनी तीव्रता बरतनी चाहिए जितनी कि दूरगामी समाज-रचना का चित्र गांवों में बनाने के काम में।

देश की समस्याओं के हल में सर्वोदय के सेवकों की जिम्मेदारी और भी अधिक है; क्योंकि उनसे जनता ही नहीं, सरकार भी अपेक्षा रखती है। प्रधानमंत्री स्वयं भी पवनार आ कर पूज्य विनोबाजी से सलाह-मशविरा करती हैं और उनके प्रतिनिधि यहां मिलने आते हैं और मुझे विश्वास है कि यहां की सलाह को योग्य सम्मान देते हैं। यह सिलसिला बढना चाहिए और मेरा सुझाव है कि एक प्रतिनिधि-मंडल को इस बारे में प्रधानमंत्री से मिलना

चाहिए। हो सकता है कि समय कुछ और प्रतीक्षा मांगता हो। मुझे मालूम है कि वक्त नाजुक है, परंतु इस बारे में हमें पूर्णतया संवेदनशील रहना जरूरी है। इसके लिए एक छोटा ग्रूप हमारे बीच ऐसा हो, जो सतत संपर्क – संबंध रखता हुआ, दिशा-दर्शन में सहायक हो सके और हमें बता सके कि आज की हालत में (इमरजन्सी में) जो प्रोग्राम अच्छा है उसका लाभ गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों में, जो अखिल भारतीय दृष्टि से सामयिक औचित्य रखता है, उसको कैसे मिले।

फिर जीवमात्र के प्रति जो समादर और बराबरी का भाव हमारे लिए आवश्यक है, उसको भी हम न भूलें। सारी दुनिया में आज मानव को दूसरे प्राणियों के प्रति प्रेम और उनकी रक्षा करने की बात समझाया जाना बहुत अधिक आवश्यक है। हमारे यहां इसको प्रतीक मिला है – 'गोरक्षा' के रूप में – प्रकृति के साथ और पशु-प्राणियों के संबंध में हमारा दृष्टिकोण है वह पारस्परिकता का है। इसको कैसे बढ़ावा मिले और अधिकाधिक नागरिकों का सहयोग प्राप्त हो इसके बारे में आप सभी को कार्यक्रम की दृष्टि से विचार करना होगा।

मुझे आज याद आते हैं हमारे पहाड़ों पर बसे लोग। उनके और मैदान के बीच का संबंध मधुर और सहायक होना चाहिए। ये ही हमारे आदिवासी कहलाये जानेवाले बंधुओं के भी आवासस्थल हैं। उनके प्रति हम अपने कर्तव्यों को न भूलें। हम पायेंगे कि ऐसे बहुत-से जीवन और सामाजिक मूल्य हैं, जिनको आदिवासी क्षेत्र में संजोया गया है, जिनसे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं और जिनका उपयोग अहिंसक समाज-रचना के लिए कर सकते हैं।

विश्व की जो स्थिति है उसमें समय की गंभीरता का भान रखते हुए हमें बहुत-से कामों में लगना होगा। इसलिए मैं बराबर कहता हूं कि 'जागो और काम में लगो।'

आपमें से कुछ को मालूम है कि मैंने ईसाई धर्मपंथ के 'बेनेडिक्शन आर्डर' का ऑब्लेट (अर्पित व्यक्ति) बनना स्वीकारा है। इस कर्तव्य आर्डर में ब्रह्मचर्य, आज्ञाकारिता, सादगी, सामूहिक जीवन, स्वावलंबन, शरीरश्रम

को बहुत महत्त्व दिया जाता है और 'कार्य ही प्रार्थना है' इसको मानते हैं। ये वे ही बातें हैं, जिन पर हम सब जोर देते आये हैं, पर देखने की बात यह है कि इन पर हम अमल कितना करते हैं। हमने सत्य को ही ईश्वर माना है और जो हम बोलें उस पर अमल करें, यह हमारे लिए अत्यंत आवश्यक है। अंततोगत्वा, जो समाज-परिवर्तन के कार्य में लगे हैं उनको अपने जीवन को भी बदलना होगा। और उन निष्ठाओं की ओर बढ़ना होगा, जिनको हम जीवनमूल्य मानते हैं, चाहें वह ट्रस्टीशिप के हों, सादगी के हों या भाईचारे के। हम हमेशा अपने को टटोलते रहें और कथनी तथा करनी का अंतर कम करते जायें यह जरूरी है।

जैसा कि ईसाई धर्ममठों और ननों के लिए ब्रह्मचर्य और आज्ञाकारिता को महत्त्वपूर्ण माना गया, हम भी इन शिस्तों के पालन को मानते हैं, पर जैसा जोर वे इन पर देते हैं, वैसा हम नहीं दे पातें, यह तो करना ही चाहिए। पर जो सबसे अधिक महत्त्व की बात है, वह है हमारा परस्पर का भाईचारा। आजके इस सम्मेलन का विशेष संदेश है – 'एक-दूसरे से तुम प्यार करो।' ईसा का यह वाक्य हमारे लिए आज जितने महत्त्व का है उतना कभी नहीं था। हम इस रास्ते पर बढे हैं और काफी आगे आये भी हैं, उससे भी कहीं आगे जाना है। इसके लिए हमें सदैव ध्यान रखना है कि मतवैभिन्न होते हुए भी एकता सध सकनी चाहिए। हमारे अपने बीच में निःस्वार्थ स्नेह और सहकार का दर्शन होना चाहिए। यह कैसे सधे, हमारा भाईचारा कैसे बढे और हम एक कैसे बनें, इस प्रमुख विषय पर आप सबको चिंतन कर के रास्ता खोजना है। यही आज का विशेष विषय है। मैं जानता हूं कि आज सबके सामूहिक प्रयास से अवश्य ही रास्ता खुलेगा और हम सब सत्य और स्नेह की मंजिल की ओर बढ सकेंगे, जिसकी स्पष्ट कल्पना बापू ने हमारे सामने रखी है।

एक निवेदन

रामनंदन मिश्र

पूज्य विनोबाजी,

25 दिसंबर को आपके लिखित वक्तव्य का जो संक्षिप्त अंश बिहार के पत्रों में छपा है उससे मुझे बडी प्रसन्नता हुई। विशेषतः उस वाक्य से जहां आपने कहा है कि आपके लिए अध्यात्म का अर्थ है हृदयग्रंथियों का खोलना। 24 वर्षों पर अपने संयम के एक व्रत को भंग कर एक प्रेस वक्तव्य दिया है, जिसकी प्रति साथ है। उस वक्तव्य में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के जिस स्पर्श की चर्चा है (पैरा दो) उसका थोडा विस्तृत ब्योरा, जो 'जीवन के चार अध्याय' की भूमिका में है, भी साथ पेश है। मेरे अंतर की अनंत श्रद्धा का अर्घ्य स्वीकार करें। आपके आशीर्वाद का आकांक्षी,

2 जनवरी, 1977 — रामनंदन

जीवन के चार अध्याय की भूमिका :

भोग और वैराग्य के प्रबल आकर्षणों के बीच संतुलन ढूंढती हुई जीवन-धारा चली जा रही है। यह संतुलन जिस कर्म-क्षेत्र में ढूंढना पडा, उसके द्वार पर ही परिवार, समाज और सरकार ने द्वंद्व खडा कर दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में जोर के साथ कहा – "मेरी मर्जी से चलो, अन्यथा रोटी के भी लाले पडेंगे।" अपने विचारों और सिद्धांतों का आकर्षण उलझ पडा जीवन के सुख और शांति के आकर्षण से। अंत में विचारों का आकर्षण विजयी हुआ।

इस विजय की भूमिका, अपनी चढती जवानी में, 16 वर्ष की अवस्था में, श्री. रवींद्रनाथ ठाकुर के एक मर्म-स्पर्शी व्याख्यान से मुझे मिली थी। हिंदू-विश्वविद्यालय के सभाभवन की वह संध्या, जब मंच की सीढियों पर बैठा हुआ मैं विश्व-कवि के करुणारस की गद्य-कविता सुन रहा था, शायद कभी

न भूलेगी । कांपती हुई वाणी में कवि कह रहे थे –

"सांसारिक सुखवाद जिस ऊंची-से-ऊंची चोटी पर तुम्हें पहुंचा सकता है, उसकी भी कल्पना ऋषियों ने की थी । आप बडे-से-बडे धनी, महान वक्ता, प्रतिभाशाली कवि हो सकते हैं, लेकिन उन चोटियों पर भी चढ कर कवि-ऋषि पुकारता है – 'ततः किम्' ।"

कवि कहते गये,

"पश्चिम सभ्यता के वज्र-प्रहार से पूर्व की आंखें चौंधिया गयी हैं । इस समय अनासक्त गार्हस्थ्य-धर्म, संन्यास, आदि उपहास की वस्तु बन गये हैं । पश्चिम से बहती हुई इस प्रचंड धारा को जब मैं देखता हूं, मेरा रोम-रोम कांप उठता है । युगों का परिश्रम क्या मिट्टी में मिलनेवाला है ? प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्तूप को जब मैं टूट कर गिरते हुए देखता हूं, मेरे हृदय की करुण व्यथा अंतरिक्ष में गूंज कर कहती है – ततः किम् ।"

वक्तव्य :

28 नवंबर से मैं जीवन और मृत्यु के बीच झूलता रहा । अब मैं खतरे से बाहर हूं किंतु अभी तक बहुत कमजोर हूं । बीमारी और उससे मुक्ति, दोनों ही को मैंने परमेश्वर का प्रसाद समझ कर ग्रहण किया है । मैं नहीं जानता, मुझे और कब तक इस संसार में जीवित रहना है ।

मैंने 1952 में सोशलिस्ट पार्टी से त्यागपत्र देने के बाद, अब तक, अपने आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक के निर्देश के अनुसार, कभी सार्वजनिक वक्तव्य नहीं दिया । अब मैं अपने अंतर्यामी प्रभु की प्रेरणा पा कर, उस व्रत को प्रथम बार तोड रहा हूं, जिसका पालन पिछले चौबीस वर्षों से यत्नपूर्वक करता रहा । अपने उक्त त्यागपत्र में, सोशलिस्ट पार्टी के तत्कालीन महामंत्री श्री. अशोक मेहता को मैंने लिखा था कि मेरा पुरातन प्रेम मुझे वापस पुकार रहा है । सोलह वर्ष की उम्र में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के चरणस्पर्श और मर्मस्पर्शी अभिभाषण ने मुझे 'अनासक्त-गार्हस्थ्य-धर्म' के प्राचीन महान आदर्श पर चलने की प्रेरणा थी । उसी आध्यात्मिक भावावेश में मैंने वाराणसी के गंगातट पर उस आदर्श को अपने जीवन में मूर्तरूप देने का संकल्प लिया था । उसके एक वर्ष

बाद पूज्य गांधीजी ने उसी वाराणसी में औपचारिक संन्यास ग्रहण करने की

अपेक्षा संन्यासी की तरह स्वतंत्रता के लिए अनासक्त भाव से काम करने की सलाह दी थी। अपने को पूर्णत: शुद्ध किये बिना ही, मैंने उनके परामर्श के अनुसरण की चेष्टा की। स्वभावत: मुझसे भयानक भूलें हुईं। 1952 में, मैंने अपनी भूलों के लिए पश्चात्ताप किया और जवानी के दिनों की सुप्त अंत:प्रेरणा की ओर वापस लौट पडा। आध्यात्मिक प्रकाश की खोज में मैं देश के एक छोर से दूसरे छोर तक भटकता रहा। परंतु आध्यात्मिक साधना के साथ सामाजिक तथा राजनीतिक स्वतंत्रता की भावाग्नि कभी बुझी नहीं और इस आशा से कि मेरा संपर्क देश की राजनीति को आध्यात्मिक पुट देगा, मैं अपने पुराने राजनीतिक मित्रों से मिलता रहा।

अब, अपने अंतर की प्रेरणा से, मैंने राजनीतिक मामलों पर बातचीत, पूरे तौर पर बंद कर देने का निश्चय किया है। मैं अपने पुराने मित्रों से अनुरोध करता हूं कि वे किसी राजनीतिक प्रश्न पर बातचीत करने के लिए मेरे पास नहीं आया करें।

अनासक्त गार्हस्थ्य-धर्म की ज्योति-शिखा प्रज्वलित रखने के लिए मैंने पारिवारिक जीवन में ही रहने का निश्चय किया है। मेरे लिए परिवार का अर्थ उन सभी से है जिनमें सत्य और प्रेम के आधार पर अपने जीवन को शुद्ध करने की उत्कंठा है। आध्यात्मिक गुरु होने की न तो मुझमें योग्यता है और न रुचि। परंतु मेरे घर के दरवाजे उन सभी के लिए खुले रहेंगे, जो आध्यात्मिक मामलों पर मेरी सलाह चाहते हैं तथा जो अपनी शुद्धि के लिए सचाई के साथ प्रयत्न करने को तैयार हैं। मेरे लिए अध्यात्म का अर्थ है व्यष्टि का समष्टि में विलयन।

मैं अपने पुराने मित्रों और परिचितों से प्रार्थना करता हूं कि यदि मैंने उन्हें कभी चोट पहुंचायी हो, तो मुझे क्षमा करें। मैं अपनी तरफ से सभी मित्रों और परिचितों को विश्वास दिलाता हूं कि यदि उन्होंने कभी मुझे कोई चोट पहुंचायी भी हो तो मुझे उसकी कोई याद आज नहीं है। भगवान उनका कल्याण करें। इस नये जीवन की सफलता के लिए मैं अपने सभी मित्रों से शुभकामना और आशीर्वाद चाहता हूं।

अनासक्त गार्हस्थ्य-धर्म अत्यंत ही कठिन है। यह लगभग वैसा ही है, जैसा कि आग के बीच दिव्य प्रेम के कमल को खिलाये रखना। मैंने अपने पुत्रों, पुत्र-वधुओं और अन्य संबंधियों को कह दिया है कि वे सांसारिक समस्याओं के लिए मेरी तरफ न देखें और इस संबंध में किसी तरह की सहायता पाने की आशा भी मुझसे नहीं रखें। यदि वे मुझे नहीं छोड देते, तो मैं ही उन्हें छोड दूंगा और निर्जन में विश्राम करूंगा। इसी प्रकार मैं अपने मित्रों से भी निवेदन करता हूं कि वे सांसारिक समस्याओं के समाधान के लिए मेरे पास आया न करें। यदि मेरे परिवार के सदस्य, संबंधी या मित्र मेरा निवेदन नहीं स्वीकार करते तो मुझे अपना घर और शहर छोड देने के लिए बाध्य होना पडेगा। मैं अपने परिवार के सभी सदस्यों, संबंधियों और मित्रों से प्रार्थना करता हूं कि वे अनासक्त गार्हस्थ्य-धर्म की ज्योति जलाये रखने में मेरी सहायता करें।

मैं अपने जीवन के शेष काल में रमण महर्षि, रवींद्रनाथ ठाकुर, सतीश-चंद्र मुखर्जी, आचार्य विनोबा भावे और नगाबाबा के आदर्शों पर चलने की कोशिश करता रहूंगा। आध्यात्मिक ज्योति के प्रति अपने अन्वेषण के अंत में मैंने अपने जीवन को पूज्य श्री कालीपद गुहा राय के चरणों पर चढा दिया था। मर्त्य शरीर का त्याग करने से कुछ घंटे पूर्व, अपना जो अंतिम आलिंगन उन्होंने मुझे प्रदान किया, आध्यात्मिक प्रकाशस्तंभ के रूप में वह चिरकाल तक प्रदीप्त रहेगा।

संसार में व्याप्त निराशा, आर्थिक एवं राजनीतिक वृत्तियों के प्रति मानव-मन की एकनिष्ठ दत्तचित्तता तथा उनसे उत्पन्न नैतिक पतन की पराकाष्ठा से मेरा हृदय दग्ध होता जा रहा है। लेकिन मैं अपनी सीमा को जानता हूं। आंसुओं में डूबी मेरी प्रार्थनाओं पर तरस खा कर उच्चतर आध्यात्मिक शक्तियां करुणा-द्रवित हो, जिस तरह उसके पहले वे मानव-जीवन में हस्तक्षेप करती आयी हैं, वैसे ही, इस संकट की घडी में भी करें। इस प्रार्थना के साथ मैं प्रभु के चरणों में अपने को अर्पित कर रहा हूं। उनकी इच्छा पूरी हो।

श्रीगाडगेमहाराज

कालिन्दी

श्री. गो. नी. दांडेकर की एक प्रख्यात मराठी पुस्तक का परिचय। आपकी दूसरी एक पुस्तक 'स्मरणगाथा' को साहित्य अकादमी का 1976 का पारितोषिक प्राप्त हुआ है। चार साल आपने श्रीगाडगेमहाराज की निकट संगति में बिताये हैं। महाराज की जन्मशताब्दी के अवसर पर इस पुस्तक का सार (अधिकांश लेखक की ही भाषा में) यहां प्रस्तुत है।

पूज्यता डोळां न देखावी। स्वकीर्ति कानीं नाईकावी
हा अमुका ऐसी नोहावी। सेचि लोकां

अपनी पूज्यता स्वयं न देखें। अपनी कीर्ति स्वयं न सुनें। बल्कि, 'यह अमुक आदमी है', ऐसी पहचान भी किसी को न हो।

चातुर्य लपवी। महत्त्व हारवी
पिसेपण मिरवी। आवडोनी

ज्ञाता पुरुष होता है, वह अपनी चतुरता छिपाता है। अपने बडप्पन का पता भी नहीं लगने देता। और जानबूझ कर पहन रखा पागलपन दुनिया को दिखाता रहता है।

जगें अवज्ञाचि करावी। संबंधीं सोयचि न धरावी
ऐसी ऐसी जीवीं। चाड बहु

दुनिया – लोग मेरी अवज्ञा करें, तिरस्कार करें, सगे-संबंधी मेरी छांव भी सहन न करें, उसको यही अत्यंत प्रिय है।

जो मानापमानीं साहे । दुखदु:ख जेथें सामावे
निंदास्तुति नोहे । दुखंडु जो
उन्हाळेंनि जो न तापे । हिमवंतीं न कांपे
काइसेनि न वापिसे । पातलेया

इस महात्मा के मन पर मान-अपमान के प्रहार अपनी कोई निशानी नहीं छोड पाते । सुख-दु:ख तो उसमें सहज ही समा जाता है । निंदा-स्तुति के कारण उसका मन खंडित नहीं होता – टूटता नहीं । चिलचिलाती धूप हो या सिकुडानेवाला जाडा हो, अपने पर वह किसी का भी असर होने नहीं देता । चाहे जिस तरह से, चाहे जो उस पर गिर पडे, अपने चित्त को वह भय का स्पर्श होने नहीं देता ।

प्रवचनकार ने ज्ञानेश्वरी की ओवियों पर भाष्य किया । और उसका बीज किसी एक सुननेवाले के मन में बोया गया । इसी मार्ग से जाने का उसने तय कर लिया ।

भूख लगती है, मतलब क्या इसका ? जी प्यास से व्याकुल होता है, मानी क्या हैं इसके ? शरीर थकता है, यानी क्या होता है ? इस सबकी खोज करनी है ।

धूप कितनी पीडा देती है ? जाडा कितना सिकुडाता है ? बारिश कितनी भिगोती है ? इस सबको एक बार जांच लेना है ।

शरीर तो यह मेरा मेहनत का आदी है । बरसों तक पांवों में कुछ पहना ही नहीं है । ओढने-बिछाने के कपडों का तो और ही आनंद ! अभी तो मैं जवान हूं । सुखदु:ख के प्रहारों को सहन कर सकता हूं । ज्ञानदेव-महाराज की ओवियां तो कंठस्थ ही हैं । अर्थ उनका सुन लिया है । ज्ञानोबा के ये वचन प्रत्यक्ष जीवन में उतारने हैं । शरीर को एक प्रयोगभूमि बनाना है ।

उस दिन आकाश में उदयमान सूर्यनारायण की साक्षी में तपश्चर्या का प्रारंभ हुआ । मैं धोबी हूं, यह बात किसी को बतानी नहीं है । धोबी अछूत थोडे ही माने गये हैं ? जाति को भूल जाने की पूरी कोशिश करनी है । कोई अगर पूछ ही ले तो जो भी सूझेगा वह बता देना है – महार हूं,

चमार हूं, ढोर हूं, मांग हूं, पर अपनी जाति नहीं । फिर भी भूख तो लगेगा ही । घर छोडा इसलिए भूख थोडे ही छूटेगी ! भूख, प्यास, नींद, थकान सब, जन में, वन में पीछा करनेवाले हैं ही । तो फिर क्या करना होगा ? बिना श्रम के रोटी खानी नहीं । और खूब चलना, खूब घूमना । सभी पाश तोड ही दिये हैं । कोई बंधन अब बाकी नहीं रहा । मुक्तता प्राप्त कर ली है । उसका पूरा-पूरा लाभ ले लेना है ।

थकान यानी क्या ? ठंड किसे कहते हैं ? बिस्तर किसलिए चाहिए ? सिरहाने तकिया किसलिए ? ओढने कपडा किसलिए ? भगवान का आसमान पर्याप्त नहीं है ?

भय यानी क्या ? डरें किसको ? किसलिए ? सुख किसका नाम ? वेदना किसे कहते हैं ?

बारिश आती है, मतलब होता क्या है ? ऐसी आती भी कितनी है बारिश ? उससे अपना संरक्षण किसलिए करना पडता है ?

दया यानी क्या ? ममता के मानी ? क्षमा किसका नाम ? सहनशक्ति किसे कहते हैं ? शरीर कितने कष्ट सहन कर सकता है ?

इस तरह नाना प्रकार से खोज करनी और उस खोज के द्वारा परमात्मा को ढूंढना है ।

क्या वह मंदिर में है ? क्या तीर्थों में है ? क्षेत्रों में है ? कबीर ने कहा है –

जत्रा में फतरा बिठाया । तीरथ बनाया पानी

यह अगर सही है तो लोग तीर्थों में क्यों जाते हैं ? भगवान की भक्ति का फिर इतना क्यों व्यर्थ स्तोम ? क्या ये तीरथ, ये यात्राएं, ये मेले, तपश्चर्या के स्थान, सब निरर्थक हैं ?

तुकाराममहाराज ने कहा है – जो पीडितों को, दुखियों को अपना मानता है, वही साधु है, वही भगवान है ।

तो क्या भगवान दीन-दुर्बलों की सेवा में है ? उनका एक आंसू भी पोंछ सके तो क्या वही भगवान पर अभिषेक होता है ? इस तरह, हर तरह

से खोज करते रहना है। यह देह उसी के लिए बनानी है।

महाराष्ट्र के संत गाडगेबाबा का संपूर्ण जीवन धधकते अग्निकुंड की कहानी है।

परिस्थिति अत्यंत प्रतिकूल। सौ साल पहले का काल। विदर्भ में, शहर से खूब दूर, एक छोटे-से गांव में जन्म। वह भी धोबी के कुटुंब में। धोबी जमात बहुत सुधरी हुई तो नहीं मानी जायेगी। लोगों के कपडे धोना और शराब के नशे में पडे रहना, यह इस जमात का जनमान्य रिवाज। घर में बच्चा जन्मा या कोई मरा तो बकरा काटा जायेगा और पूरी जमात को शराब पिलायी जायेगी, इसके बिना छुटकारा नहीं। स्वयं गाडगेबाबा के जन्म के समय भी इन नियमों का पालन हुआ ही होगा।

शिक्षा के बारे में पूछें तो सब आनंद ही आनंद। धोबी हो और उसे लिखना-पढना आता हो तो वह मानो सजा करने लायक अपराध ही है, उस समय की यह जन-रीति थी। स्वयं बाबा भी निरक्षर थे। आगे चल कर जब उन्होंने लाखों रुपयों का दान प्राप्त कर अपने प्रचंड सेवाकार्य खडे किये, और उसके ट्रस्ट का दस्तावेज बना तब उस पर बाबा के हस्ताक्षर उनके अंगूठे की निशानी से ही हुए।

पिता शराबी। घर-धंधा सब शराब में डूबो दिया। उसी में उनकी मृत्यु हुई। पिता की मृत्यु के बाद अनाथ डेबुजी अपने मामा के घर छोटे के बडे हुए। वहां तो थे कष्ट ही कष्ट। ढोरडंगरों की देखभाल, खेती के काम, मकान की मरम्मत, सफाई...कितने ही काम! पर इस प्रतिकूल परिस्थिति में भी इस अनाथ बच्चे ने अपना जो कर्तृत्व दिखाया, उसे देख कर समाज अचंभे में पड गया। दिनभर अधिक से अधिक श्रम करना, जो मिला सो खाना — अधिकतर बासी रोटी ही और रात को भजन-मंडलियों के साथ मधुर आवाज में भजन गाना, कथा-कीर्तन-प्रवचन सुनना। स्वच्छ सुवर्ण जैसे चारित्र्य के डेबुजी ने गांव के दिल को जीत लिया था।

और एक मौके पर अंतर की प्रेरणा जाग उठी। डेबुजी धोबी को एक दिन खेत में एक साधु की संगति प्राप्त हुई। एक पूरा दिन उस साधु के साथ

एकांत में, अज्ञातस्थल में बिताया। और सारा जीवन ही पलट गया। गृहस्थी स्वादहीन लगने लगी, कर्तव्यनिष्ठ मन को खेती आदि नित्य कर्मों में उदासीनता महसूस होने लगी, और फिर मन ने निर्णय ले लिया। घर-गृहस्थी, वृद्ध मां, पत्नी, मासूम वच्चा, सबको छोड कर डेवुजी निकल गये आकाश के नीचे, पृथ्वीतल पर भ्रमण करने के लिए।

भ्रमण, भ्रमण, भ्रमण !

इस परिभ्रमण में जनस्थिति का निरीक्षण किया। विद्याहीनता के कारण गंवार रूढियों में फंसे समाज के अध:पतन का प्रत्यक्ष अनुभव लिया। शिक्षा के अभाव में कितने ही जीवन-पुष्प सूख जाते हैं, इसको देखा। कितनी ही गृहस्थियां शराब के प्याले में डूब कर सर्वनाश को पहुंचती हैं, यह भी देखने मिला। साहूकार के कर्जे के कोल्हू से कितनों का खून बूंद-बूंद टपकता रहता है, इसकी जानकारी मिली। छूत-अछूत-भेद के कारण समाज में जो दरारें पडी हैं, उसका अनुभव हुआ।

और फिर, जीवनभर अपनी अमोघ वाणी से इन महासंकटों के खिलाफ वे युद्ध करते रहे। अचरज की बात तो यह है कि गाडगेबाबा कभी किसी मठाधीश के शिष्य नहीं बने। खुदने ही खुदका सिक्का बनाया, और उसे खन्खन् बजा कर ही बाजार में चलाया। उन्होंने समाज के दातृत्व को आवाहन किया। श्रद्धावानों ने लाखों रुपये उनके मटके में डाले। उसके हर पाई का, हर पैसे का उपयोग बाबा ने सत्कर्मों में किया, जनसेवा में किया।

प्रचंड धर्मशालाएं खडी कीं। अंधों के, अपंगों के लिए सदावर्त चलाये। जहां पीने को पानी नहीं मिलता था, उन क्षेत्रों में बडे-बडे प्याउ चलाये। अनाथ वृद्धों के लिए झोंपडियां बना दीं, आखिर तक उनकी सार-संभाल की। गायों को कसाइयों के हाथ से छुडवाया, गोरक्षण का कार्य बडे परिमाण में किया। अकालपीडितों को अन्न पहुंचाया। निरक्षरों के लिए शाला-प्रशालाएं खोलीं। गरीबों के लिए छात्रालय खोले। हजारों-लाखों लोगों को मद्यपान के व्यसन से मुक्त किया। अस्पृश्यता के खिलाफ जोरदार प्रचार किया। देवताओं के नाम से होनेवाली पशुहत्या के, बलि चढाने के विरुद्ध सतत लडाई छेडी। कई स्थानों

पर प्रतिकार के रूप में सामने खड़े हो कर हत्याएं नहीं करने दीं। नदियों पर घाट बंधवाये। आर्थिक, सामाजिक भेदों के खिलाफ, गलत धार्मिक रूढियों के खिलाफ लोगों को सतत जागृत करते रहे। और कइयों के मन में वैराग्य की भावना जगायी, जनसेवा की प्रीति पैदा की। उनके अनुयायियों में सवर्ण-अवर्ण, स्त्री-पुरुष, शिक्षित-अशिक्षित सभी थे और सभी पर उनका समान वात्सल्य प्रकट होता था। हजारों, लाखों रुपयों का व्यवहार करने पर भी स्वयं बाबा जीवनभर भिक्षा मांग कर ही खाते थे। वृक्ष की छाया में, धरती पर, खेतों में ही सोते थे– **करतल भिक्षा, तरुतल वासः।** मां, पत्नी, बच्चे इन आप्तों को भी उन्होंने कडे श्रम किये बिना, या तो श्रम के साथ भी भिक्षा मांगे बिना, कभी खाने नहीं दिया।

घर छोडा तब अपने साथ लिया था केवल एक "गाडगे" (छोटी मटकी) और एक लाठी। अंत तक केवल ये दो ही चीजें उनके पास थीं। इसी पर से उनका नामकरण हुआ 'गाडगे'महाराज। शरीर पर रहता था एक कुरतानुमा पहनावा, जो असंख्य छोटी-छोटी रंगबिरंगी चिथडियों का बना रहता था। नीचे एक छोटी लुंगी। सिर पर बाल बढे हुए, दाढी-मूंछों का जंगल। हाथ में "गाडगे"। मानो कोई सुधबुध खोया अधपागल ही रास्ते से जा रहा है।

मिट्टी की वह लुटिया फूट गयी। अब दूसरी चाहिए। कुम्हार के दरवाजे पर खडे हो जाते हैं, एक मटकी दो। कुम्हार कहता है, मुफ्त कैसे दूं? कहते हैं, मुफ्त मत दो, काम करता हूं। कुम्हार भी वस्ताद, कहता है, करता है तो कर। फिर चार-चार पांच-पांच घंटे कडी मेहनत करते हैं। दोपहर में कुम्हार भोजन के लिए जाता है, तो बाबा वहां से पौबारह हो जाते हैं। गांव छोड कर चले जाते हैं। कुम्हार इस पागल मजदूर के लिए रोटी ले आता है। देखता है, मजदूर है नहीं, पर सौंपा हुआ काम पूरा हुआ है।

किसान अकेला खेत में काम कर रहा है। चिथडियों की पोशाक पहना हुआ कोई आ कर उसे कहता है, भैया, चार पुल्ले कडवी तो दो मुझे। किसान नाराज हो जाता है। यह औलिया कहता है, मुफ्त नहीं मांग रहा, काम करवा लो मुझसे। किसान सोचता है, अच्छा मिला मजदूर। उसके हाथ में

कुल्हाडी दे देता है। औलिया दिनभर काम करता है, बबूल की लकडियां तोड लाता है, खेत को सुंदर बाड बना देता है। किसान उसकी कुशलता की ओर चकित दृष्टि से देखता ही रहता है। बाड पूरी होती है। पसीना पोंछते हुए औलिया किसान से कहता है, अब ले आइए पुरनपोली (एक विशेष प्रकार की मिठी रोटी) और घी का मटका। किसान खिल्ली उडाते कहता है, कितना लाऊं ? एक किलो, दो किलो ? औलिया कहता है, ले आइए एक किलो। आधा अभी खाऊंगा, आधा कल के लिए रख दूंगा। हंसते हुए किसान जाता है ज्वार की सूखो रोटो लाने। और इधर औलिया लंबे डग भरते हुए वहां से निकल जाता है।

कभी किसी कुएं पर बैठ लोगों से पूछता है; इस कुए का पानी पी सकता हूं, प्यासा हूं ? लोग पूछते हैं, कौन हो तुम, जाति क्या है तुम्हारी? कहता है, चमार हूं। लोग चिढ जाते हैं, कुएं को छू लिया, कैसा हरामखोर है तू! अच्छी पिटाई होती है। चुपचाप हरिस्मरण करते हुए मार खा लेता है और बिना पानी पीये वहां से चला जाता है।

कोई बूढी घास का बोझ सिर पर ले कर जा रही है। औलिया आ कर बोझ अपने सिर पर ले लेता है। कहता है, माई, थक गयी होगी तुम, मैं पहुंचा देता हूं यह बोझ। बूढी खुश हो जाती है। घर पहुंचने पर कहती है, रुको थोडी देर, रोटी-पानी ले कर जाओ। बूढी अंदर जाती है, और औलिया अदृश्य हो जाता है।

रोज का खाना कैसा ? दो जून ज्वार की आधी रोटी और उसके साथ जो भी मिला, मिर्च, चटनो, सूखा बेसन या केवल पानी। हाथ पर रोटी और सिर पर पेड की छाया। कभी किसी के घर खाया नहीं, कभी किसी के घर पर और बिस्तर पर सोये नहीं। खुले आसमान के नीचे, जंगल-खेतों में सोना और गांव के बाहर पेड के नीचे बैठ कर खाना।

गाडगेबाबा ने गांव-गांव में 'हरिनाम सप्ताह' मनाने की पद्धति चलायी। छोटे-छोटे गांवों में सात दिन का कार्यक्रम होता। उनके अनुयायियों में से कोई एक, गांव में पहुंच जाता। गाडगेबाबा का अनुयायी है तो सारा गांव

उसकी मदद में आ जाता है। मंदिर में सात दिन तक खड़े-खड़े अखंड नामजप चलता। साथ-साथ ग्रामभोजन। भोजन का इंतजाम गांववाले खुशी-खुशी मिलजुल कर करते। प्रतिदिन प्रवचन, संकीर्तन होते। सद्‌विचारों की बरसात होती। आखिरी दिन स्वयं बाबा वहां उपस्थित रहते। उस दिन आसपास के गांवों से हजारों लोग वहां पहुंच जाते। सबका भोजन एकसाथ होता। सबका भोजन पूरा होने तक बाबा स्वयं देखभाल करते और फिर खुद किसी घर से ज्वार की आधी रोटी मांग कर ले आते और गांव के बाहर, पेड के नीचे बैठ कर खाते।

नाम सप्ताह की जगह, यात्रा-मेलों की जगह, अपने केंद्रों में, सर्वत्र बाबा का एक ही कार्यक्रम रहता। सुबह पौ फटते ही सबको जगाना, सबके हाथों में लंबी-लंबी झाडू देना और सार्वजनिक स्थानों की सफाई करवाना। इसमें उनका अनुशासन और कुशलता अपूर्व थी। काम में सुंदरता रहती। कहीं कुछ छोटी-सी गलती भी वे सहन नहीं करते। उनकी तालीम में अनुयायी खूब कुशल हो जाते। शुरू-शुरू में तो बाबा अकेले ही रहते। किसी गांव में पहुंच जाते, झाडू से मैदान झाडने लगते। गांववाले पूछते – कौन हो रे तुम ? जवाब मिलता, रात को एक बाबा का यहां कीर्तन है, इसलिए सफाई कर रहा हूं। दिनभर कहीं खेत में रहते। रात को आ जाते, दो पत्थरों के ताल बना कर भजन गाने लगते। उनकी मधुर आवाज सुन कर लोग इकट्ठा होने लगते। देखते तो वही चिथडियोंवाला पागल जो सुबह मैदान झाड रहा था, अब गा रहा है। और फिर होता लोगों को खुदको भूला देनेवाला कीर्तन !

बाबा के कीर्तनों को अपार भीड इकट्ठा हो जाती। रिवाज के अनुसार कीर्तन खतम होने के बाद लोग चरणस्पर्श करने आते। पर बाबा कीर्तन के अंत में सब लोगों से मधुर धुन गवाते – **गोपाला गोपाला देवकीनंदन गोपाला।** लोग नामगान में डूब जाते तब बाबा चुपके से वहां से खिसक जाते, पेडों की ओट लुक जाते। कभी कुछ भावुक लोग उनको खोज लेते और नजदीक आ कर चरणस्पर्श के लिए झुक जाते तो बाबा की लाठी उनकी पीठ पर जा बैठती। कभी किसी को वे अपना चरणस्पर्श नहीं करने देते।

बाबा का कीर्तन प्रवचनकार का कीर्तन नहीं होता, वह होता साक्रेटिस की पद्धति का। धीरे-धीरे लोगों के दिल में घुस कर, उनको पता भी न चले इस प्रकार उनके गलत विचार, गलत कामों की ओर वे अंगुलीनिर्देश करते। बाबा पूछते –

"जिसने यह पृथ्वी पैदा की, आसमान का छप्पर ऊपर टांगा, उसमें सितारों को लटका दिया, जिसने हमारे लिए बारिश पैदा की, वह भगवान एक है या दो ?"

गांववालों के सामने पहेली खडी हो जाती। उनकी धीमी आवाज सुनायी देती – "एक।"

हंसते हुए बाबा कहते – "शरम आती है कहने को ? जोर से कहो।"

"एऽऽक।" जोरदार आवाज में लोग कहते।

"ठीक, सोच-समझ कर बोलो, भगवान कितने हैं ?"

"एऽऽक।"

"ठीक, अब हिसाब करो। गांव के बाहर 'खंडोबा' का मंदिर है या नहीं ?"

"है।"

"और 'विरोबा' का मंदिर ?"

"वह भी है।"

"फिर कितने हुए भगवान ?"

"दोऽऽ।" लज्जित हो कर लोग जवाब देते।

"गांव की सीमा पर 'मरीमाय' का पत्थर है या नहीं ?"

"है।"

"कितने हुए भगवान ?"

"ती ऽऽन।"

इस तरह सभी देवी-देवता की गिनती होती। फिर बाबा की आवाज एकदम ऊपर चढ जाती, पूछते –

"भगवान हो गये पंद्रह। तिस पर भी आपको संतोष नहीं। पीर को

मनौती करोगे, तावुत को मनौती करोगे। तो फिर शुरुआत में भगवान एक

है कहते हुए अक्ल कहां गयी थी ? साहूकार के पास बंधक रखी थी ?"

लोग अब पूरी तरह से जागृत हो जाते। ध्यानपूर्वक सुनते। बाबा पूछते –

"इन देवी-देवता को मनौती करते हो या नहीं ?"

"हां, करते हैं।"

"कहते हैं कि नहीं, भगवान, मेरे मुन्ने को ठीक कर दो, तुमको एक बकरा दूंगा ?"

"हां, कहते हैं।"

"कहते हैं या नहीं, भगवान, मेरे इस 'दो पैरवाले' को छोड दो, तुमको 'चार पैरवाला' दूंगा ?"

"हां, कहते हैं।"

"क्यों भाई ? 'दो पैरवाला' क्या भगवान को कडुआ लगेगा ? अरे, जिसने पृथ्वी पैदा की, वह भगवान इतना लालची है, रिश्वतखोर है ? ऐसा कैसा तुम्हारा भगवान। लेता है बकरे की जान। क्या वह साहब के घर का चपरासी है, जो उसे कहेंगे कि भाई, ये एक किलो बैंगन ले लो और मेरी चिट्ठी साहब के पास पहुंचा दो ?"

"नहीं, नहीं।"

"अरे, जिसने यह दुनिया पैदा की, उसको लालच दिखाते हो ? यह भी ठीक है, भगवान को बकरा देने का कबूल किया, और आपका मुन्ना ठीक हो गया। तो भगवान के नाम से उस बकरे को छोड देना चाहिए। फिर भगवान उसे काट कर खाये, कच्चा खाये, पका कर खाये। उसे आप जंगल में छोड दीजिए। ठीक है या नहीं ?"

"ठीक है।"

"ठीक है ? अरे, फिर आपके मिर्च-मसालों का क्या होगा ? बेकार जायेंगे ना वे ?"

फिर मसाले पीसने की, चाव से खाने की बाबा नकल करते, श्रोताओं

को खूब हंसाते, फिर पुनः आवाज चढ जाती, तीव्र स्वर में कहते –

"अरे, इतनी आपके दिल में ममता है कि अपने दो महीनें के मुन्ने की कितनी फिक्र करते हो ! उसको कहीं हवा न लग जाये इसलिए कितनी हिफाजत से उसे कपडे में लपेट लेते हो। और उस बकरे के बछडे पर छुरी चलाते हो ? क्या उसकी मां नहीं है ? क्या उस मां के दिल में अपने बछडे के लिए ममता नहीं है ? उसको मूर्ति के सामने लाते हो, उसकी गर्दन मरोडते हो, छूरी चलाते हो, खून का मूर्ति को अभिषेक करते हो – यहां से वहां तक खून की धारा बहती है। और फिर मिर्च-मसाला डाल कर उसे पकाते हो और चाव से खाते हो। फिर भगवान से क्या कहते हो ? भगवान, हमारा और मुन्ने का भला कर। भगवान तुम्हारा भला करेगा ? उसके एक बच्चे को काट कर खाया और उसी से कहते हो मेरा भला कर ? करेगा वह आपका भला ? आपका कभी भी भला होगा नहीं ..."

लोगों की आंखों में आंसू जमा हो जाते। बाबा का भजन शुरू हो जाता – गोपाला गोपाला देवकीनंदन गोपाला। लज्जित श्रोतृसमुदाय चुपचाप भजन करने लगता।

गाडगेबाबा दयालु थे, और कठोर भी। भूतमात्र की करुणा से उनका हृदय भरा हुआ था। साथ ही वे उदासीन थे। अपार कष्ट करने की सामर्थ्य उनके पास थी। समूचे महाराष्ट्र को उन्होंने हिला दिया था, जीत लिया था। वह एक अमर्याद, अपार व्यक्तित्व था। अनेकों के वे श्रद्धास्थान थे, और हैं। उनकी ज्ञान-भक्ति उनके कर्मयोग में समाविष्ट थी। जनसेवा करते-करते, सफर में ही अक्षरशः रास्ते पर उन्होंने अपनी देह छोडी। 19 दिसंबर 1956 को।

यह वर्ष उनकी जन्मशताब्दी का वर्ष है। महाराष्ट्र में जगह-जगह उनकी शताब्दी संपन्न हो रही है। शासन से ले कर जनता तक सभी का उसमें अभिक्रम है। ऐसी इस श्रेष्ठ आत्मा को कोटिशः प्रणाम !
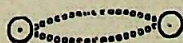
सबकुछ

किसी फकीर के पास एक कंबल था। उसे किसी ने चुरा लिया। फकीर उठा और पास के थाने में जा कर चोरी गयीं चीजों की लंबी सूची लिखवाने लगा। उसने लिखवाया कि उसका तकिया, उसका गद्दा, उसका छाता, उसका पाजामा, उसका कोट और उसी तरह की बहुत-सी चीजें चोरी गयी हैं। चोर भी उत्सुकतावश पीछे-पीछे थाने चला आया था। सूची की इतनी लंबी-चौडी रूपरेखा देख कर वह मारे क्रोध के प्रकट हो गया और थानेदार के सामने कंबल फेंक कर बोला – "बस यही एक सडा-गला कंबल था; इसके बदले इसने दुनियाभर की चीजें लिखा डाली हैं!" फकीर ने झट अपना कंबल उठा लिया और वह बाहर जाने को उद्यत हुआ ही था कि थानेदार ने झूठी रिपोर्ट लिखाने के अपराध में उसे सजा देनी चाही। फकीर ने कहा – "साहब, मेरी रिपोर्ट झूठी नहीं है। देखिए, यही कंबल मेरे लिए सबकुछ है – यही मेरा तकिया है, यही मेरा छाता, यही पाजामा और यही कोट है।" बेशक उसकी बात ठीक थी। इसी तरह सच्चे फकीर के लिए ईश्वर ही उसका सबकुछ होता है।

स्वामी रामतीर्थ

हर्जाना

सूफियों जैसा जामा पहने एक आदमी कहीं जा रहा था। उसने पास से गुजरते एक कुत्ते को जोर से डंडा जमा दिया। कूं-कूं करता हुआ कुत्ता दौडता हुआ महान सूफी फकीर अबू सईद की खिदमत में पहुंचा और अपना घायल पंजा उनके आगे बढा कर उसने उनसे न्याय की मांग की। अबू सईद ने उस आदमी को बुलवाया और पूछा, "इस मूक प्राणी के साथ तुमने यह सलूक किया?" सूफी बोला – "महाराज, मैंने इसे अकारण नहीं मारा है। इसने मेरा जामा खराब कर दिया।" मगर कुत्ता अपनी शिकायत पर अडा रहा, तो अबू सईद ने उससे कहा, "कयामत के दिन जो फैसला होगा, सो तो होगा ही, मगर बताओ तुम्हें क्या हर्जाना दिलाया जाये।" कुत्ते का उत्तर था,

"महाराज, जब मैंने इस आदमी को सूफियों का जामा पहने देखा, तो निश्चित हो गया कि यह मुझे नुकसान नहीं पहुंचायेगा। अगर इसने साधारण लोगों जैसे कपडे पहने होते, तो मैं इससे बच कर निकलता। मेरी गलती यह थी कि इसके सूफी जामे पर विश्वास कर के मैंने इसे निरापद मान लिया। इसलिए अगर आप इसे सजा देना चाहते हैं, तो इसका यह जामा उतरवा दीजिए।"

–इदरीस शाह

कान से सुनो

एक साधक ने कन्फ्यूशियस से पूछा – "मैं मन पर संयम कैसे रख सकता हूं।" कन्फ्यूशियस बहुत बडा साधक था, योगी था, महान दार्शनिक था, महान तत्त्ववेत्ता था। उसने कहा – "मैं इसका सीधा-सा उपाय बताता हूं, छोटा-सा सूत्र देता हूं। क्या तुम कानों से सुनते हो?" साधक ने कहा – "हां।" कन्फ्यूशियस बोला – "मैं नहीं मान सकता कि तुम कानों से सुनते हो। तुम मन से सुनते हो। एक काम करो, आज से केवल कान से सुनना प्रारंभ कर दो। मन से सुनना बंद करो। तुम जीभ से चखते हो, यह मैं नहीं मान सकता। तुम मन से चखते हो। आज से केवल जीभ से चखना प्रारंभ करो। मन से चखना बंद कर दो। मन पर अपने आप संयम हो जायेगा।"

'अणुव्रत' से

भक्तजनों की कसम

कालिन्दी

तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै। ईश्वरभक्त के नाते अनेक होते हैं। 'तात-मात गुरु-सखा' तो प्रख्यात ही हैं। 'हौं दीन, तू दयालु', 'हौं भिखारी, तू दानि', ये भी हैं। अलावा इसके, हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी, इस नाते का वर्णन तुलसीदासजी ने खूब ही किया है। परंतु, कर्नाटक के, जनमानस पर राज करनेवाले, विठ्ठल के भक्त पुरंदरदास ने जिस नाते का

वर्णन किया है, उस नाते को क्या नाम दें ? सख्यभक्ति का नाता ! या मैत्री का नाता ? यह कहने से भी यहां पर्याप्त आशय नहीं व्यक्त होगा। यह है खेल के साथी का नाता। वे कहते हैं, हे रंग, पांडुरंग, **ऐनगू निनगू इब्बरिगू** – मुझे और तुमको, दोनों को कसम है। **ऐनगू आणे**, मुझे भी कसम है, **निनगू आणे** – तुमको भी कसम है। किसकी ? **भक्तर आणे** – भक्तों की कसम। पुरंदरदास स्वयं हैं भक्तशिरोमणि। स्वाभाविक ही यद् यद् आचरति श्रेष्ठः के न्याय से भक्तों की कसम का मीठा बोझ भक्तशिरोमणि पर रहेगा ही। पर भगवान के सिर पर किसलिए यह बोझ ? इसका जवाब दिया है महाराष्ट्र के संत तुकाराममहाराज ने। **आतां दोन्हीं पक्षीं लागलें लांछन। देवभक्तपण लाजविलें।** अब दोनों पक्षों को लांछन लगने का समय आ गया है, देवपन और भक्तपन, दोनों को शर्मिंदा हो जाने की स्थिति आ गयी है। क्यों ? क्योंकि, **तुम्हीं माझा देवा करा अंगीकार। हा नाहीं विचार मजपाशीं** – भगवान, आप मेरा स्वीकार करें, यह विचार – भावना मुझमें क्यों नहीं आ रही है ? क्या यह हम दोनों के लिए सिर नीचे झुका देनेवाली बात नहीं मानी जायेगी ? इसलिए भगवान, अब अंतिम फैसला – 'अल्टिमेटम' दे रहा हूं कि **ऐनगू निनगू इब्बरिगु भक्तराणे**। कसम तो उन्हीं की दी जाती है, जो प्राण से भी अधिक पिया होते हैं। मां की कसम बच्चे के लिए सर्वाधिक महत्त्व की और मां को बच्चे की। अपने पूजागृह में, प्रिय उद्धव की पूजा में मग्न भगवान को भक्तों के अलावा और किसकी कसम दी जा सकती है ?

पुरंदरदास कहते हैं, अगर मैं तुम्हें छोड कर अन्य किसी का भजन करूं तो मुझे कसम है और तुम मुझे छोड कर चले जाओगे तो तुमको कसम है। तन, मन, धन से मैं वंचक हो जाऊं – धोखेबाज बन जाऊं, उनकी चोरी करूं, तो मुझे कसम है; और मेरा मन तुम अपने में स्थिर, एकाग्र नहीं कराओगे तो तुम्हें कसम है। कितना मीठा उलाहना ! अगर मैं अनन्य न बनूं, तो मुझे कसम, पर मुझे अनन्य न बनाओगे तो तुम्हें कसम ! किस पर ज्यादा जिम्मेवारी ?

अगर मैं खराब मनुष्यों का संग करूं तो मुझे कसम है, और प्रापंचिक

झंझटों से मुझे नहीं छुड़ाओगे तो तुम्हें कसम है। सज्जनों का संग न करूं तो

मुझे कसम है, और दुर्जनों के संग से नहीं छुडाओगे तो तुम्हें कसम है। ठीक ही है। दुर्जन-संग का कारण ही है मोह। अगर सांसारिक मोह से तुम मुझे छुडा दोगे तो गलत संगति का मूल ही नष्ट हो जायेगा। बल्कि सज्जन-दुर्जन भेद ही नहीं रहेगा, सभी में छुपी सद्भावना का ही दर्शन होगा।

और अंत में, तुम्हारा आश्रय, तुम्हारी शरण न लूं तो मुझे कसम है। पर हे पांडुरंग, विठ्ठल का पुरंदर कह रहा है कि अगर तुम मुझ पर प्रसन्न नहीं होंगे, तो तुम्हें कसम है। मेरा काम है सिर्फ शरण लेना। प्रसाद देने का अधिकार तुम्हारा है। मेरा काम है कोशिश करना। कर्तृत्व के मालिक तुम हो। इसलिए कर्तृत्व की स्वतंत्रता मुझे मत दो। अपने करत मेरी घनी घटि गई। कर्तृत्व के कारण तो हानि हो जायेगी। मेरा अधिकार है शरण लेने का और तुम्हारा कर्तव्य है अनुग्रह करने का। अगर इन दोनों में हम किसी तरह कम पडेंगे तो भक्तजनों की हमें कसम है।

ऐनगू आणे रंग निनगू आणे
ऐनगू निनगू इब्बरिगू भक्तराणे
निन्न बिट्टु अन्यर भजिसिदरेनगे आणे रंग
ऐन्न नी बिट्टु पोदरे निनगे आणे
तनुमन धनदलि वंचकनादरे ऐनगे आणे रंग
मनसु निन्नलि निल्लिसदिद्दरे निनगे आणे
काकु मनुजर संगव माडिदरेनगे आणे रंग
लौकिकव बिडिसदिद्दरे निनगे आणे
शिष्टर संगव माडदिद्दरे ऐनगे आणे रंग
दुष्टर संगव बिडिसदिद्दरे निनगे आणे
हरि निन्नाश्रय माडदिद्दरे ऐनगे आणे रंग
पुरंदर विठल नीनो लियदिद्दरे निनगे आणे

बस्तर की चिट्ठी

जब पहली बार ज्ञात हुआ कि यह वर्ष माता रुक्मिणी की जन्मशताब्दी का पुण्य-वर्ष है, तभी मन में निश्चय हो गया था कि माता रुक्मिणी की स्मृति में कुछ करना है। मध्यप्रदेश की 'शिमला' कही जानेवाली पचमढी में मुख्यमंत्री श्री. श्यामाचरणजी शुक्ल ने बस्तर में दो आदिवासी आश्रम प्रारंभ करना स्वीकार किया। इनमें से एक का नाम 'माता रुक्मिणी आश्रम' प्रस्तावित किया गया। जब पूज्य बाबा ने कहा कि 'हम तीन बेटे माता रुक्मिणी की जन्मशताब्दी मनायेंगे।" तब भीतर से आवाज उठी कि हम भी इसे मनायेगा। यह बात किसी से कहने की हिम्मत तो नहीं हुई पर इसने कुछ करने की प्रेरणा अवश्य दी। भाई केयुरभूषण के साथ बाबा के सामने मध्यप्रदेश में माता रुक्मिणी आश्रम खोलने की बात रखी। बाबा ने हमें अपनी सहमति दी और आशीर्वाद भी लिखित दिया।

प्रदेश के सभी साथियों के हार्दिक सहयोग से 11 अक्तूबर 1976 के दिन एक छोटे-से सादगीभरे परंतु प्रीतिपूर्ण भावनाओं, उद्गारों और सहयोग से समारोह में माता रुक्मिणी सेवा-संस्थान की विधिवत् स्थापना हुई। बाबा के लिखित संदेश – आशीर्वाद को सुन कर आमभावना की अभिव्यक्ति हुई कि बाबा के आशीर्वाद से अब बस्तर में रचनात्मक कार्य आरंभ हो रहा है। यह बस्तर जिले का सौभाग्य है।'.

संस्थान की स्थापना के समय से ही मध्यप्रदेश भू-व्यवस्था-समिति के कार्यकर्ता वहां भूमिवितरण सर्वेक्षण का कार्य कर रहे हैं। लगभग 150 ग्रामों के सर्वेक्षण के साथ उन्होंने आदिवासियों के जीवन के विविध पहलूओं का अध्ययन किया है। उससे लगता है कि उनकी सरलता, सत्यता और अपरिग्रह लाजवाब है। शहर के तथाकथित शिक्षित लोग उनकी हंसी उडाते हुए कहते हैं कि वे कल के लिए कुछ नहीं करना चाहते। 'आज का भोजन प्राप्त कर लिया अब कल का कल देखेंगे।' ऐसी आदिवासियों की वृत्ति है। शायद यह

आरण्यक संस्कृति है, जो उपनिषदों में प्रतिबिंबित हो कर हमारी भावनाओं में और आदिवासियों में आज भी जीवित है। कम से कम साधनों से अधिक से अधिक मस्तीभरा उनका प्राकृतिक जीवन उन्हें प्रसन्नता, स्वास्थ्य और प्रेम प्रदान करता है। शुद्ध वायु-धूप-मिट्टी से संपर्क, प्रकृति की विविधता से निकट रिश्ता, स्त्री-पुरुष की समान प्रतिष्ठा, परिश्रमशीलता और नृत्यसंगीत की विपुलतावाला उनका जीवन दरिद्री नहीं है। वस्तुओं की दृष्टि से वे अवश्य ही गरीब हैं। इतने गरीब कि आश्चर्य होता है। परंतु वस्तुओं की गरीबी से वे दुःखी नहीं हैं। हां, उनके स्वावलंबी जीवन में होनेवाले हस्तक्षेप का वे जरूर दुःख प्रकट करते हैं।

शिक्षा तथा शहर और सडकों का विकास उनके जीवन में परिवर्तन की चहल-पहल पैदा कर रहा है। उसके अच्छे और बुरे दोनों प्रभाव देखने को मिलते हैं। शहर तथा कस्बों के आसपास का आदिवासी ठगा के ठाकुर होने की कहावत को चरितार्थ कर रहा है। वह अब रिक्शाचालक, सागभाजी पैदा करनेवाला, बेचनेवाला और कुली-मजदूर बन रहा है। झूठ बोलना भी सीख रहा है। शिक्षा ने उनमें अच्छे जीवन की ललक पैदा की है। कृषि और सिंचाई की सुविधाओं की बढती इच्छा भी यत्रतत्र दिखायी देती है। सडकों ने उनके शोषण के अवसरों के साथ समझदारी को भी बढाया है। सडकें उनमें अलगाव की तीव्र भावना को शांत करने के अवसर तथा इच्छा भी पैदा करेंगी ही। ये सभी परिवर्तन अभी अपनी प्रारंभिक अवस्था में हैं और उन्हें निकटता तथा सूक्ष्मता से देखने पर ही देखा जा सकता है। अन्यथा तो अज्ञान और अभाव, आर्थिक शोषणऔर उत्पीडन के साथ बाहरी व्यक्तियों द्वारा स्त्रियों की अप्रतिष्ठा उनकी प्रमुख पीडा है। परंतु अब असंदिग्धरूप से कहा जा सकता है कि वह जाग रहा है और परिवर्तन करने की तैयारी कर रहा है। वह बाहर के उद्धारकों को स्पष्टतः नकार रहा है। परंतु अब चंद वर्षों में वह अपने भीतर से नेतृत्व प्रकट करेगा। प्रेमभरी सेवा से उसका सच्चा विकास-पथ निर्माण करना एक चुनौती ही है।

गंगे गंगेति यो ब्रूयात्

* *

गंगे गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति

ऐसी जिसकी ख्याति वह गंगामाता ! उसके अंक पर लेटा तीर्थराज प्रयाग ! और उसकी गोद में लाखों-करोडों भाविकों का संगम ! पूर्णकुंभ के निमित्त से वहां जो भक्ति का महोदधि उमड आया था उसने न केवल भारतीयों को ही द्रवित किया, पर जिस किसी के पास श्रद्धाभरा हृदय है, उन सभी के हृदय में उसने भक्तिगंगा की तरंगें उछाल दीं।

अमरीका की 25 साल की सुसन तीन माह ब्रह्मविद्या-मंदिर में रही। यहीं से वह सीधा प्रयाग गयी। जाने के दिन उसने बाबा से पूछा – "मुझे कोई भारतीय नाम दीजिएगा।" और बाबा ने लिख दिया – "सुचिता – 'एवर अटेंटिव'।" पश्चिम के इस हृदय ने किया कुंभ का शब्दांकन –

कुंभ ! एक देखने जैसा दृश्य ! सर्वत्र श्यामवर्ण के शरीर, गेरुवे वस्त्र-धारी, ऐसे एक नहीं, दो नहीं, हजार नहीं, लाख नहीं, पचास लाख से भी अधिक की वह मेदनी ! जीवन में मैंने कभी इतने लोग एकसाथ एक स्थान में आज तक देखे नहीं थे। अमीर और गरीब, देहातवाले और शहरवाले, भारतीय समाज के सादे-भोले और गणमान्य, सफेदपोश – सबके सब संगम की ओर बढते ही जाते थे। एक ही हेतु ! शरीर और मन की शुद्धि ! जत्थों पर जत्थे, टोलियों पर टोलियां धुन, भजन गाते, नाचते इलाहाबाद शहर की छः मील लंबी सडक पर से गुजर रहे थे। बीच-बीच में रुक कर पूजा करते या पारंपरिक नृत्य करते। एक जगह तो मैंने दांडियारास भी देखा, जो मैंने आश्रम में आये हुए गुजरात के साथियों को करते देखा था। भस्म लगाये साधुओं की

कतारें ही कतारें देखीं । चकित प्रवाह में भीड के साथ, उन अनेकों में से एक हो कर चलती जा रही थी । जो दृश्य देख रही थी, उसे पीती जा रही थी । आखिरी मील चलने में दो घंटे से भी अधिक समय लगा । पैर राह चलते ही जा रहे थे और अचानक मैंने अपने-आपको संगमस्थल पर पाया । ओऽहोऽ । कैसा अद्‌भुत चित्र ! भारत !! मेरे ख्वाबों का भारत, जैसा कि मैं देखना चाहती थी, याद करना चाहती थी ! प्रसन्नवदन बच्चे, बूढे, जवान, महिलाएं, पुरुष, आज के, बीते कल के, आनेवाले कल के प्रतिनिधि, समाज के हर तबके के लोग वहां मौजूद थे । सूरज की किरणों में, पानी में प्रविष्ट सारे शरीर चमकीले थे । उन सबके मुख पर संतोष था, समाधान था । चैतन्यमय पानी के स्पर्श से लाखों आंखें चमक उठ रही थीं । स्नान के बाद अपने-अपने पात्र विविध आकार के, विविध प्रकार के, ला कर उसमें पवित्र गंगाजल भर रहे थे । क्या करेंगे उसे ले कर ? अपने-अपने स्थान में आसपास के लोगों को, रिश्तेदारों को उसका बूंद-बूंद दिया जायेगा । कहीं-कहीं तो उसकी पूजा भी होगी । गिली साडियों में वे महिलाएं भी सुंदर दीख रही थीं । स्नान के बाद वे सब मिल कर जत्थे-जत्थे में बालू में गोलाकार बैठ कर भोजन करते थे । हर दल के इर्दगिर्द कुत्ते भी अवशिष्ट की आशा से इधर-उधर दौडते थे । उनमें भी खुशी की लहर दौडती थी ।

गंगा का बालुमय किनारा स्नान के बाद सूखाये गये रंग-बिरंगी कपडों से भर गया था । मानो किसी किशोरी ने सृष्टिदेवी के आंगन में रंगीन अल्पना ही खींची हो !

जब मैं उस चेतन-प्रवाह में उतरने लगी तो मेरे सामान की देखभाल करने के लिए एक माझी स्वयं सामने आया । धूल-धूप से भरे मेरे शरीर को उस पवित्र जल का स्पर्श कितना सुखद लगा ! प्रवाह में खडे-खडे मेरे दिल की सारी कोमल भावनाएं उमड आयीं । दिल भरा था । पिछले पांच माह से मैं भारत में हूं । आज भारत के इस हृदयरूपी पवित्र स्थान में पचास लाख की मेदनी के साथ हूं – ये सारी मेदनी यहां उमड आयी है 'सत्य' के नाम से । और मैं ? पानी में भीगती हुई मैं मेरी आंखों के सामने उन शब्दों को

साकार हुए देख रही थी ... कौनसे थे वे शब्द ? "जहां दो से अधिक लोग मेरे नाम से इकट्ठा होते हैं, वहां मैं रहता हूं, प्रेम रहता है - - -

× × ×

भारतीय दिलों में गंगा को जो स्थान है वह अनुपमेय है। उसको मुखरित किया है इस शब्दचित्र ने (मैत्री अप्रैल 1967 से पुनरुद्धरित)।

उन दिनों कोहिमा के शांतिकेंद्र के काम के निमित्त मैं नागालैंड में थी। जयप्रकाशजी वहां आनेवाले थे। भूमिगत-नागामित्रों तथा नागालैंड के सरकारी अधिकारी मित्रों के सहयोग से जे. पी. का कार्यक्रम तय करना था। उस समय खबर मिली कि असम तथा नागालैंड के गवर्नर श्री. विष्णु सहाय कोहिमा पहुंचे हैं। डॉ. अरम ने कहा, 'चलें, गवर्नरसाहब से भी इस संबंध में बात करें।' थोडे ही समय के बाद हमारी जीप पहाड के टेढे-मेढे रास्ते पर दौडने लगी और चंद मिनिटों में ही ऊंचे वृक्षों और विविध रंग के फूलों की क्यारियों के बीच खडे राजभवन के अहाते में जीप खडी हो गयी। गवर्नरसाहब हमसे हमेशा ही अनौपचारिकता से पेश आते। आज भी वैसा ही हुआ, हंसते हुए वे ही स्वयं बाहर आये। बरामदे में बेत की कुर्सियों पर बैठ कर बातें आरंभ हुईं। काम की बातें शुरू कीं। लेकिन गवर्नरसाहब आज कुछ दूसरे ही मूड में थे। काम की बातों को थोडे में निपटा कर वे अपनी बात सुनाने लगे – "इन दिनों एक बात बार-बार मेरे मन में आ रही है। प्रभु की कृपा से जीवन में मुझे सब कुछ हासिल हुआ है। मेरे बच्चे भी अच्छी तरह से अपने-अपने मार्ग पर लग गये हैं। मुझे भगवान से कोई शिकायत नहीं है। अब एक ही ख्वाहिश है। सेवा-निवृत्त होने के बाद गंगा-किनारे छोटा-सा घर ले कर रहने और विश्वविद्यालय में बच्चों को विनामूल्य इतिहास पढाने की। पता नहीं क्यों, गंगा मुझे खींचती रहती है।"

हम लौटे तब जीप में हवा की आवाज के साथ उनकी आवाज कान में गूंज रही थी – 'गंगा मुझे खींचती रहती है।' आलीशान मकान में रहनेवाले, ऐश्वर्य में जीवन बितानेवाले व्यक्ति को भी गंगा खींचती है।

बीमारी की हालत में बाबा से बिदा लेकर मुजफ्फरपुर से काशी आयी। मेरे चाचा और चाची नागपुर का अपना घर छोड कर काशी में वानप्रस्थी जीवन बिता रहे हैं। उनके काशी के निवास में उन्हें मैं पहली बार मिल रही थी।

सुबह का समय था। बरामदे में घूमते हुए चाचा मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ कर रहे थे। बीच में ही रुक कर अचानक कहने लगे – "यही हम दोनों को यहां खींच लायी।" मैं देखने लगी। चाचा अंगुलीनिर्देश कर रहे थे बालरवि अपने कोमल रंगीन किरणों से गंगामैया को नहला रहा था। चाचा कह रहे थे – "गंगा का यह सतत दर्शन, यहां यही एक मेरा बडा आनंद है।"

मेरे चाचा बहुत बडे विद्वान, चिंतनशील, मशहूर लेखक हैं। आज तक मैंने उन्हें कभी भी मूर्ति-पूजा करते नहीं देखा, न किसी मंदिर में जाते देखा। उनके मन में गंगा के प्रति इतना गहरा भाव होगा, यह मैं कैसे जानती? उस दिन उसका दर्शन हुआ।

शांतिकेंद्र की जीप के ड्राइवर शांतिकुमारभाई मणिपुर के वैष्णव हैं। ड्राइवर के धंधे में सात्त्विक वृत्ति का दर्शन अक्सर कम होता है। लेकिन शांतिकुमारभाई ऐसे एक बिरल ड्राइवर हैं। वे हमेशा कहते हैं – "मरने से पहले एकबार गंगाजी के दर्शन तो मुझे करने ही हैं। यह मेरा संकल्प है।"

भारतीय जनता के प्यारे पं. जवाहरलालजी दुनिया छोड कर गये। उनके जाने के बाद उनका मृत्युपत्र प्रकाशित हुआ था। उसमें उन्होंने इच्छा प्रकट की थी कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी रक्षा गंगा में विसर्जित की जाये। गंगा के प्रति उनके मन में जो पूजनीय भावना थी, उसे व्यक्त करते हुए उनकी कलम ने मृत्युपत्र में मानो गंगा पर एक मधुर काव्य ही लिख डाला है।

माना तो यह जाता था कि पंडितजी पर पश्चिम संस्कृति का अधिक असर है। किंतु उनके मृत्युपत्र से जाहिर हुआ कि उनका हृदय भारतीय था। और गंगा ने अपनी प्रीति से उनको वैसे ही अभिमंत्रित किया था, जैसे किसी

अन्य भारतीय हृदय को वह करती रहती है।

काशी से मेरी सफर पुनः आरंभ हुई। रास्ते में गंगामाता विदा दे रही थी। भगवान विष्णु के पदकमल से निकली हुई गंगा! शंकर भगवान की जटा में रहनेवाली यह पवित्र गंगामाता! जिसके पावन किनारे हजारों ब्रह्मर्षियों तथा राजर्षियों ने तपस्या की है, वह गंगामैया! कैसा जादू भरा है उसमें कि वाल्मीकि, कालिदास जैसे महाकवियों को ही नहीं, बल्कि शंकराचार्य जैसे महाज्ञानी को भी वह प्रेरित करती है। शंकराचार्य ने उसका स्तोत्र गाया है – **कुतोऽवीचिर् वीचिस् तव यदि गता लोचन पथम्**! तुम्हारी पानी की लहर, तरंग यदि दृष्टिपथ में आ गयी तो फिर नरक कैसे मिलेगा। इतना ही नहीं, तेरी गोद में शरीरधारियों की देह पडेगी तो हे गंगामैया, उसके सामने **शांतक्रतव-पद-लाभोऽप्यतिलघुः** – इंद्रपद भी अति लघु है। मराठी के विख्यात कवि मोरोपंत ने भी गंगा की महिमा गायी है,

> **तुझ्या तीरीं नीरीं हृदय रमते दुःख शमतें**
> **यशोगानें पानें कुमत गळतें विघ्न टळतें**
> **कळी-भंगे गंगे ! षडरि झुरती, दोष नुरती**
> **दिली रामें नामें तशीच जगतीला निजगति**

– तेरे तीर पर, जल पर, हृदय रममाण होता है, दुःख का शमन होता है; तेरे यशोगान के पान से कुमति गल जाती है, विघ्न टलता है। कलि का भंग करनेवाली हे गंगे! षड् अरि (काम-क्रोधादि छः शत्रु) झुरने लगते हैं, दोष बचते ही नहीं, जैसी रामनाम ने जगती को निजगति दी है, वैसी ही तू ने दी है!

– कुसुम
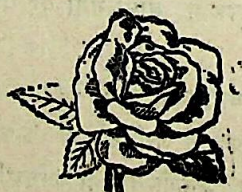
पत्र-संपुट

श्री अखिलेश्वरसिंह का जन्म मुंगेर जिले (बिहार) के मेझौल गांव में 1801 में हुआ था। 1821 में स्कूल की पढाई छोड, गांधीजी के आवाहन पर आजादी की लडाई में सम्मिलित हुए। दो बार जेल गये। 1952 से विनोबाजो के भूदानयज्ञ में लगे रहे। अपनी जमीन का भूदान में दान भी दिया। विनोबाजी के प्रति उनकी बडी भक्ति थी। जून 1976 में पवनार में हुए अधिवेशन में भाग लेने आनेवाले थे, रेल्वे की टिकट भी कटवा ली थी; लेकिन भगवान की कोई दूसरी ही योजना थी। अचानक उन्हें दिल का दौरा पड गया और 25 जून 76 को वे चल बसे। मैत्री पत्रिका के प्रति उन्हें स्नेह और आदर था। स्वयं पूरी पत्रिका नियमितरूप से पढते थे और अपने स्नेहीजनों को, उसमें रस पैदा कर के ग्राहक बनाते। मैत्री-परिवार उनका ऋणी है। उन्होंने बनाये हुए एक मैत्री-मित्र का उन्हीं के नाम आया पत्र उनके स्मरण में यहां उद्धृत है–

.... 'मैत्री' की प्रति मिली। 'ईशावास्यं इदं सर्वम्' शीर्षक पढने के बाद जो प्रतिक्रिया हुई, उसी की अभिव्यक्ति इस पत्र का उद्देश्य है। अनेक बार आग्रह कर 'मैत्री' का ग्राहक बना कर आपने मेरा जो उपकार किया है। मैं नहीं जानता था कि 'मैत्री' इतनी उपादेय है। 'मैत्री' पढ कर आदमी अपने बचे हुए जीवन को सन्मार्ग पर ला सकता है। यद्यपि मैं एक हाईस्कूल का हेडमास्टर हूं, फिर भी शब्द की गरीबी अनुभव कर रहा हूं। उपयुक्त शब्द नहीं मिल रहे हैं, जिसके द्वारा आपका गुणानुवाद कर सकूं। 'मैत्री' का अध्ययन समाज में फैली वैचारिक दरिद्रता दूर कर उसे चारित्रिक बल प्रदान करेगा।

मथुराप्रसाद सिंह, दुनही

वरंगल जेल

श्री. रणजित् देसाई,

ब्रह्मविद्या-मंदिर की 'मैत्री' का अंक हमें यहां मिलता है। श्री. निवृत्ति रामराव पवार के नाम पर यहां आता है और हम सब पढते हैं। यहां मराठी, हिंदी, तेलगु लोग हैं। 'मैत्री' हिंदी में होने के कारण सभी उसको पढ सकते हैं। 'मैत्री' हिंदी भाषा में निकलती है, यह बहुत ही उचित है। इस संबंध में मैं अपना एक अनुभव लिख भेज रहा हूं।

मैत्री के 76 के फरवरी के अंक में धूम्रपान के बारे में एक लेख था, जिसमें लेखक ने धूम्रपान से जो बुरे परिणाम आये उसका वर्णन किया है। लेखक का अपना अनुभव था। मुझ पर उस लेख का बहुत असर हुआ। मैंने तुरंत अपने दो मित्रों को वह लेख पढ कर बताया और वह विचार हमारे दिमाग में पैठ गया। पंद्रह दिन लगातार हम उस पर चर्चा करते रहे। और पंद्रह दिन के बाद महाशिवरात्रि आयी, उस दिन से हमने सिगरेट पीना छोड दिया... 'मैत्री' पढने में बहुत ही अच्छा लगता है... नि. रा. पवार

इन्दौर (म. प्र.)

प्रिय कालिन्दी,

बहुत दिन से लिखने का सोच रही हूं, आज निश्चय ही कर लिया कि पत्र लिखे बिना दूसरा काम करूंगी नहीं। खास कर मुझे 'मैत्री' के बारे में ही लिखना है। 'मैत्री' मैं समग्र पढती हूं। प्रायः प्रातःकाल या सायंकाल अकेली होती हूं तब। किसी पठनीय पोथी के प्रति जो भावना रहती है उसी पवित्र भावना का उस समय अनुभव करती हूं। उसमें से कितने ही लेख मेरे मन की पकड ले लेते हैं। दिसंबर के अंक में कुसुमबहन का 'जिसमें संगीत नहीं' लेख बहुत ही अच्छा लगा। करुणा में बह न जायें, तटस्थता रखें, पर प्रत्यक्ष करुणा बरतने की जहां आवश्यकता है वहां नाहक तत्त्वज्ञान का अडंगा न लगायें। कितना सुंदर विचार है! हर अंक में इस तरह कोई न कोई सुंदर आचरणयोग्य बोध मिलता है और मेरे जैसे साधारण व्यक्ति को आशा की किरण हाथ लग जाती हैं... तुम्हारी भाभी

आश्रम-वृत्त

ब्रह्मविद्या-मंदिर, पवनार

कहा ही है, शिष्टागमने अनध्यायः। बडे-बडे अतिथि पधारते हैं तब प्रतिदिन के काम को थोडा एक ओर रखना ही पडता है। दिसंबर 23, 24, 25 को सर्वोदय समाज का सम्मेलन आश्रम की भूमि पर संपन्न हुआ। देश-विदेश के सन्मानीय अतिथियों का मनोहर संगम हो गया। स्वाभाविक ही वह पूरा हफ्ता यहां के प्रतिदिन के अनिवार्य कामों के अलावा बाकी सब कामों की छुट्टी मनाने में ही बीता। पर ऐसी छुट्टी मनाना हमारे लिए बहुत किफायत साबित नहीं होती। यहां के हमारे भिन्न-भिन्न कार्य न हम पर किसी ने लादे हैं, न हम उसके लिए किसी और को जिम्मेवार हैं। जिम्मेवार हैं हम केवल एक वस्तु के प्रति – अंतरात्मा के प्रति। तो स्वभाविक ही इच्छा रहती है कि हमने उठाये हुए कार्य को किसी प्रकार की क्षति न पहुंचे और इसका बराबर ख्याल भी रहता है। दूसरी भी एक बात है। हम चाहते हैं कि श्रमनिष्ठा हमारे जीवन में पूरी तरह से आ जाये। हमारा यह दावा कदापि नहीं कि हमारा यह जीवन मजदूरों का जीवन है। पर श्रमनिष्ठा का तत्त्व जीवन में उतारने के लिए हमने माना है कि अपना अन्न-वस्त्र हम अपने श्रम से पूरा करने की कोशिश करें। खेती और मुद्रणालय से हमें काम के घंटों के हिसाब से मजदूरी मिलती है। इसलिए छुट्टी लेने का मतलब ही होता है एक प्रकार से यह मान लेना कि बाद में दुगना काम करना है। इसलिए सम्मेलन खतम होते ही कामों का एक तांता ही शुरू हो गया। सम्मेलन-प्रीत्यर्थ रसोईघर को तीन दिन छुट्टी थी। वहां का ताला खुल गया। खेत-बगीचे के पौधे उत्सुकता से हमारी बाट जोह रहे थे, उधर दौडना पडा। मुद्रणालय में तो दो-दो पत्रिकाएं तैयार करनी थीं – कन्नड विश्वनागरी और

मैत्री । और मैत्री तो हमेशा से कुछ पहले ही मित्रों के पास पहुंचानी थी ।
कामों की होड लग गयी ।

पर ऐसी व्यस्त परिस्थिति में भी, 29, 30, 31 तारीखों को रोज सुबह नौ बजे केदारनाथ के आंगन से, "ज्ञानराज गुरु माउली तुकाराम", "विठ्ठल विठ्ठल विठ्ठल" की नादमधुर ध्वनि सुनायी देते ही पैर अपने-आप उस दिशा में चलने लगते । तुका म्हणे तोचि सुदिन सोहळा, गाऊं या गोपाळा धणीवरी । गोपाल का – भगवान का नामगान करना ही हमारे लिए सुदिन है, उत्सव-समारोह है। ऐसा यह समारोह तीन दिन धूमधडाके से संपन्न हुआ । आलंदी (श्रीज्ञानदेवमहाराज का समाधिस्थान) की वारकरी शिक्षण संस्था का वारकरी-गण हरिभक्तपरायण श्री. रावसाहेब नेऊरगांवकरजी के नेतृत्व में यहां पधारा था । बाबा की संगति में तीन दिन नामसंकीर्तन करने की उनकी मनशा थी । तीन दिन भजनसंगीत, नामघोष, कीर्तन, प्रवचन की सतत वर्षा होती रही ।

हमारे नीलकंठभाई का बाबा ने नामकरण किया है "निलोबा" । लगभग 300 साल पहले महाराष्ट्र में निळोबा – नाम के एक संत हो गये । वे पंढरपुर के विठोबा के भक्त थे । नीलकंठ भाई भी विठोबा के भक्त हैं । तेरह-चौदह साल की उम्र में ही इनको भगवन्नाम की धुन लगी । एक बार गाडगेमहाराज का कीर्तन सुनने मिला । कीर्तन ने मोहिनी डाली । लगातार चार-पांच दिन उनके पीछे-पीछे घूम कर उनका कीर्तन सुनते रहे। विद्यार्थीदशा में धुलिया में आदरणीय शिवाजीमहाराज की संगति मिली । सात-आठ साल उनकी सेवा में रहे । कुछ समय आदरणीय बालकोबाजी की संगति में भी रहे । और उन्हीं के साथ ब्रह्मविद्या-मंदिर पहुंचे । उनके परिग्रह में पहनने के दो जोडी कपडों और ओढने की चद्दरों के अलावा मिलेगा केवल संत-समागम – ज्ञानेश्वरी, तुकाराम की गाथा, भजन-संग्रह, माधवदेव का नामघोषा, तुलसीदासजी की विनयांजलि आदि । उनको न है ज्ञानलालसा, न है ध्यानलालसा, फिर भोगलालसा का तो सवाल ही नहीं । ईर्ष्या, स्पर्धा, झगडा, इनका लेश नहीं । ये निलोबा भी वारकरी हैं । और उन्हीं के प्रेमाक्रमण के कारण आलंदी के वारकरीगण आश्रम में पधारे थे ।

निलोबा के साथ हेमभाई का नाम सहज ही आ जाता है। निलोबा-हेमभाई हमारे यहां की एक जोडी है । निलोबा हैं ज्ञानदेव के महाराष्ट्र के, तो हेमभाई हैं शंकरदेव-माधवदेव के असम के । दस साल से ब्रह्मविद्या-मंदिर में हैं । दोनों पूरे-पूरे भगत हैं और इसी लिए दोनों की बहुत दोस्ती है । एम्. ए. की उपाधि प्राप्त करने के बाद हेमभाई बाबा के पास आ पहुंचे। जब आये तब असमीया और अंग्रेजी के अलावा और कोई भाषा आती नहीं थी । पर अब हिंदी का तो सवाल ही नहीं, मराठी भाषा पर भी उन्होंने प्रभुत्व पा लिया है । पवनार गांव में, ज्ञानेश्वरी पर सहज भाव से मराठी में प्रवचन करते हैं । हेमभाई भी अक्सर पंढरपुर की यात्रा के लिए जाते हैं । अब तो उन्होंने एक और कार्यक्रम बना लिया है । मार्च से वे पदयात्रा पर निकलनेवाले हैं– गीताई पदयात्रा पर । अपनी संगीतमय मधुर आवाज में भजन गाते हुए जब यह भगत यात्रा पर निकलेगा तब निश्चित ही लोगों के मन को जीत लेगा।

वारकरियों के तीन दिन के मेले का सारा इंतजाम इन दो भगतों ने ही संभाला और आलंदी के साथ हमारी कडी जोड दी।

इन तीन दिनों में एक दिन ह. भ. प. श्री. नेऊरगांवकरजी का कीर्तन हुआ । बाबा उपस्थित थे । कीर्तन समाप्त होने पर बाबा ने माईक को अपने पास लाने के लिए कहा । बाबा का बोलने का कोई कार्यक्रम नहीं था । इसलिए विशेष ही उत्सुकता से सब सुनने लगे । बाबा ने कहा –

> यह 1908 की बात है । तब बाबा बाबा नहीं था, वह उसकी मां का विन्या था । यहां आपने अभी जैसा कीर्तन किया वैसा ही कीर्तन एक बार बडौदा में हुआ था। विन्या वह कीर्तन सुनने गया था । उन दिनों लोकमान्य तिलक को सजा हुई थी, उस कारण सबके चित्त में क्षोभ था, वैसे ही उन कीर्तनकार के चित्त में भी था। उन्होंने अपने कीर्तन में कहा – 'मध्ययुग के संतों ने भक्ति के नाम से लोगों को निकम्मा कर रखा है । **ठेविलें अनंतें तैसें चि रहावें,** (भगवान ने जैसा रखा है वैसे ही रहें) कह दिया ।' यह सुनते ही विन्या खडा हो गया और उसने कहा – 'मुझे कुछ पूछना है ।' कीर्तनकार ने पूछा – 'बेटा, तुम्हारा

नाम क्या है ?' विन्या ने कहा – 'मेरा नाम विन्या।' कीर्तनकार ने कहा – 'पूछो तुमको क्या पूछना है वह।' विन्या ने कहा – "तुकाराममहाराज ने कहा है, 'ठेविलें अनंतें' तैसेंचि रहावें। ठेविलें इंग्रजें' (अंग्रेजों ने जैसा रखा), 'ठेविले' सरकारें' (सरकार ने जैसा रखा) नहीं कहा। तब कैसे कहा जा सकता है कि संतों ने हमको निष्क्रिय बना रखा है ?" यह सुनते ही उन कीर्तनकार ने दोनों हाथजोड दिये और कहा – 'हम तुकाराममहाराज की क्षमा मांगते हैं। उनके भजन का गलत अर्थ हमने किया। विन्या, तुम्हारा उपकार हम कभी भूलेंगे नहीं'। इतना कहा और उनकी आंखों से आंसू की धारा बहने लगी। तुकाराम-महाराज का विन्या ने बचाव किया, यह बात तुकाराममहाराज को अच्छी लगी होगी या नहीं, मालूम नहीं। क्योंकि स्वयं उन्होंने ही कहा है, निंदकाचें घर असावें शेजारीं (निंदक का घर पडौस में हो)। परंतु कीर्तनकार का वह कहना विन्या से सहा नहीं गया इसलिए उसने वैसा कहा। यह बात बाबा कभी भूलता नहीं। आज भी याद आती है....

और बाबा बीच ही में रुक गये, आंसुओं की धारा बहने लगी, वाणी रुक गयी, लगा उन्हें आगे भी कुछ कहना था पर वह सारा शायद उसी चिंतन में लीन हो गया।

उस दिन विष्णुसहस्रनाम के पाठ के समय बाबाकुटी का आधा हिस्सा गौरवर्णियों से ही भरा हुआ था। मानो विदेशियों का कोई शिविर ही चल रहा हो। मालूम नहीं क्यों और कैसे, लेकिन लगभग रोज ही कोई एक नया विदेशी मेहमान आ ही जाता है। आता है तब कुछ सकुचाता, अजनबी-सा, पर चंद घंटों में उसके ध्यान में आता है कि उसके ही वर्ण के कई व्यक्ति यत्र-तत्र निःसंकोचता से आश्रमजीवन में शरीक हुए हैं, तो वह भी 'अॅट होम' (स्वगृह) महसूस करने लगता है।

बाबा के अलावा अत्यधिक आकर्षण की वस्तु उनके लिए यहां कौनसी होगी? दिनोंतक दिमाग चलाने पर भी बाहरवाले इसका जवाब नहीं दे पायेंगे। वह वस्तु हैं 'गोल-गोल रोटी'! यहां रोटी बनानेवाली टोली जब

रोटी बनाना प्रारंभ करती है तब ये मेहमान विस्फारित आंखों से उस प्रक्रिया को निहारते रहते हैं – पहले तो था गीले आटे का गोल छोटा-सा बॉल, दो हाथों ने एक लकडी हाथ में ली और उस पर से गोल-गोल घुमायी तो बॉल की हो गयी प्लेट, और उस प्लेट को जब चूल्हे पर सेंका गया तब उसका फिर से एक अच्छा सुंदर बॉल बन गया, न मालूम उस प्लेट में कैसे हवा भर दी गयी! और फिर देखते-देखते वह कहने लगता है, 'कृपया, मुझे भी रोटी बनाना सिखाइए!' जो भी विदेशी मेहमान आता है वह रोटी सिखाने की मांग करता है। बेचारे रोटी बनानेवाले आश्रमवासी! उन्हें निश्चित समय में रोटी भी तैयार रखनी पडती है और साथ-साथ यह 'रोटी-प्रशिक्षण केंद्र' भी चलाना पडता है।

फ्रांस की ऋता तो अब पुरानी हो गयी। दो माह से एक दूसरी बहन भी यहां है। केवल 21 साल की है। हमारी मंजू से उसकी दोस्ती हो गयी है। मंजू कहती है, वह एक बडी ही मस्त लडकी है। वह यहां आयी उसके कुछ दिन बाद मंजू ने उसे पूछा – "यहां आने की प्रेरणा तुम्हें किससे मिली?"

"मुझे मालूम नहीं।"

"कितने दिन यहां रहने का विचार है?"

"मालूम नहीं।"

"यहां से कहां जाओगी?"

"मालूम नहीं।"

"लेकिन यहां कितने दिन रहोगी, यह तो सोचा होगा न?"

"मुझे यहां बहुत अच्छा लगता है। अच्छा लगेगा तबतक रहूंगी।"

"तुम्हारे पिताजी क्या करते हैं?"

"उन्होंने मेरी मां को छोड दिया है और दूसरी स्त्री के साथ रहते हैं।"

"क्या इस बात का तुम पर कुछ असर हुआ है।"

"हां, हुआ है।"

"मां क्या करती हैं?"

"नौकरी करती है।"

"यहां आने के लिए तुम्हारे पास पैसा था ?"

"ना, नहीं था। मैं चाहती थी कि कुछ पैसा कमाऊं, पर बहुत खोजने पर भी मेरी रुचि के लायक काम कहीं नहीं मिला। हिचहाइक (सवारी की मांग) करते हुए भारत पहुंची हूं। ग्रीस में चार महीना अंगूर के बगीचे में अंगूर तोडने का काम किया। यहां सीधे आगरा आयी। वहां से झांसी गयी। झांसी में मुझे अच्छा नहीं लगा। अब कहां जाऊं, यह सोचते हुए नक्शा खोला तो वर्धा पर नजर गयी। मुझे लगा, वर्धा का नाम कहीं सुना है। सोचने लगी, कहां सुना था ? तो याद आया, शांतिदासजी की किसी पुस्तक में वर्धा के बारे में कुछ पढा था। तो सीधे वर्धा आयी। यहां उतरी, इधर-उधर पूछ-ताछ करने लगी तो किसी ने पवनार जाने की सलाह दी, और यहां आ पहुंची।"

"यहां तुमको वाकई अच्छा लगता है ?"

"हां, खूब अच्छा लगता है।',

"अभी, फिलहाल यहां बहुत बडा सम्मेलन होनेवाला है इसलिए बहुत भीड है, तुमको भारत में घूमना हो तो पहले घूम कर आओ..."

"क्या सचमुच मैं अभी यहां नहीं रह सकती हूं ? आप नहीं जानती मुझे यहां रहने से कितना लाभ मिल रहा है। मैं बहुत सिगरेट पीती थी। उसको छोडने की मैंने कई बार कोशिश की, पर छूटी नहीं। यहां आठ दिन हो गये, मैंने सिगरेट को छूआ नहीं है और उस कारण मुझे कुछ भी तकलीफ नहीं हुई है। अगर लंबे समय मैं यहां रह सकूं तो इस खराब आदत से कायम के लिए छूट जाऊंगी। प्रत्येक दिन मुझे ऐसा लगता है कि मैं पवित्र बन रही हूं।"

और वह यहां है लंबे समय के लिए। 21 साल की यह जवान लडकी प्रकृति से गंभीर है, बरताव में किसी प्रौढ के समान सौजन्यशील है। उसने कहा, 'मैं रोज पवित्र बन रही हूं'। लगा कि सुदूर देश से आयी यह लडकी, हमको कितना कुछ सिखा रही है!

— कालिन्दी
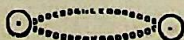
विनोबा-निवास से

"इसका अर्थ यह कि जैसे बाबा कर्ममुक्त हो गया वैसे विठोबा कर्ममुक्त हो गया है . . . ", हसी के बीच बाबा ने कहा।

एक मराठी पत्रिका का एक अंश बाबा ने सबको पढ सुनाया और उस पर यह कहा। मजलिस में थे महाराष्ट्र के हरिभक्तपरायण रावसाहेब नेऊर-गांवकर, जो अपने साथियों को ले कर तीन दिन के लिए यहां आये थे। उनसे बातें हो रही थीं। उक्त पत्रिका में क्रांतिवीर नाना पाटिल का एक संस्मरण दिया था। स्व. नाना पाटिल महाराष्ट्र के प्रख्यात स्वतंत्रता-सेनानी। 1942 के 'भारत छोडो' आंदोलन में, सातारा क्षेत्र में उन्होंने 'समांतर सरकार' स्थापित की थी। ऐसे ये नाना पाटिल पंढरपुर के विठोबा के भक्त भी थे। वारकरी थे। वारकरी के नाते उनके सिरहाने विठोबा की तसवीर अपेक्षित थी। पर उसके बदले वहां थी धनुर्धारी राम की तसवीर। उसका कारण उन्हें पूछा गया, तब वे बोले – "दुनिया में इतना अन्याय, अनाचार होने पर भी हमारा विठोबा सिर्फ कमर पर हाथ रख कर खडा है। परंतु रामजी ने हाथ में धनु लिया है इसलिए मैंने रामजी की तसवीर यहां रखी है।" इसी पर बाबा ने कहा था – "इसका अर्थ, जैसे बाबा कर्ममुक्त हुआ है, वैसे विठोबा कर्ममुक्त हो गया है।"

हंसी की लहर शांत होने पर बाबा ने आगे कहा – 'शंकराचार्य 1200 साल पहले पंढरपुर गये थे। वहां, कमर पर हाथ रख कर खडे विठोबा को देख कर उन्होंने कहा, **प्रमाणं भवाब्धेरिदं मामकानाम्**। संसार-सागर तर जाने के लिए भक्तों को विठोबा आश्वासन दे रहा है। कह रहा है कि संसार-सागर में मेरे भक्तों के लिए इतना-सा ही पानी है। कितना ? कमर तक। इसलिए कमर पर हाथ रख कर खडा है।"

थोडी देर खामोशी छायी। फिर से बोले – "कहा जाता है कि 28

युगों से विठोबा इसतरह ईंट पर खडा है ? 28 युग यानी क्या है ? 4 वेद + 18 पुरान + 6 शास्त्र = 28, ऐसा अर्थ है । संत एकनाथ ने कहा, यह विठोबा बौद्ध है । उन्होंने तो उसे **बोधाइयो** (वोधमां) कहा है। समर्थ रामदास ने भी लिखा है कि कलियुग में यह विठोबा वुद्धमुनि बना है । **कलियुगीं झाला असे बौद्ध मौनी** । जपान में प्रार्थना में **'नम्यो हो रेंगे क्यो'** कहते हैं । **'हो रेंगे'** यानी पुंडरीक । **'क्यो'** यानी धर्म । **'नमो सद्धर्म पुंडरीक'**, यह उसका अर्थ है ।"

फिर बाबा को और बात याद आयी – "चांगदेव* के बारे में खोज हुई है कि वह चीन के थे । काहे पर से ? चीन के लोगों के नाम ऐसे ही होते हैं– चांग, चींग, चुंग . . . इस पर से । चांगदेव की उम्र 1400 साल की थी, ऐसा कहा जाता है । चौदह सौ का मतलब, 100 × 14 = 1400 नहीं ; 100 + 14 =114 , ऐसा है । यह गणित बाबा बचपन में सीखा । बाबा स्कूल में जाता था तब काफी शरारती था । एक बार ऐसी ही कुछ शरारत की तो शिक्षक ने सजा दी । कहा, पांचसौ 'बैठक' (500 बार उठना और बैठना) करो। और दूसरे एक लडके को गिनती करने कहा । बाबा 'बैठक' करने लगा । थोडी देर बाद शिक्षक ने पूछा, अभीतक पूरा नहीं हुआ ? गिनती करनेवाले लडके ने कहा, अभी तो सिर्फ 123 हुए हैं । मास्टर साहव ने कहा, अरे मूरख, 18 ज्यादा ही हुए, बैठ जाओ । बाबा बैठ गया । सोचने लगा कि 500 पूरे कैसे हुए होंगे ? तो ध्यान में आया, पांच सौ यानी 100 + 5 = 105 ।"

★ ★ ★

इन दिनों दर्शनार्थियों की भीड में अधिक तर कुंभ से लौटनेवाले यात्री होते हैं। गंगासागर की या पुरी की यात्रा से लौटनेवाले भी कुछ होते हैं, तो कुछ दक्षिण से उत्तर की यात्रा पर जा कर वापस जानेवाले भी होते हैं ।

आश्रमवासियों की एक बैठक में काकाजी (बालूभाई मेहता) का सवाल था – 140 वर्षों के बाद आनेवाले इस कुंभमेले के पर्व में कडाके के जाडे में भी, जो लाखों लोग गंगा, यमुना जैसी पवित्र नदियों के संगम में स्नान करते हैं, उन्हें उनकी श्रद्धा के मुताबिक पुण्यफल तो मिलता ही होगा ?

---

* संत ज्ञानदेव के समकालीन एक संत

बाबा : पुण्यफल यात्री क्या, मैं समझा नहीं। चित्तशुद्धि ही अच्छा फल है। बाबा मानता है, वहां स्नान के लिए जो जाते हैं उनकी चित्तशुद्धि होती होगी। एक बात याद रखनी चाहिए, 'मन है चंगा तो घट में है गंगा, मन नहीं चंगा तो घट में नहीं है गंगा'। लेकिन लोग क्या करते हैं? भगवान कहां है? बोले, काशी में है। तो चलो काशी। भगवान कहां है? रामेश्वर में। तो चलो रामेश्वर। लात मार के खुद ही भगवान को दूर भेजते हैं और फिर खुद ही उसके पीछे जाते हैं। लेकिन मैं मानता हूं कि यात्रा में जानेवाले लोग श्रद्धा से जाते हैं। तो उनको लाभ हो सकता है। श्रद्धा है तो वैसी प्राप्ति होती होगी, चित्तशुद्धि की। यही उसका मुख्य फल है।

★ ★ ★

एक दुपहरी में 25-30 महिलाएं तथा चंद पुरुष भगवन्नाम लेते हुए आश्रम के अहाते में पहुंचे। इस छोटे-से जुलूस के अग्रभाग में चलनेवाले भाई के हाथ में आधुनिक महाराष्ट्र के संत गाडगेमहाराज की तस्वीर थी। ये यात्री श्री क्षेत्रपुरी आदि की यात्रा से वापस लौट रहे थे। बाबा कुटी से बाहर आ कर उनसे मिले और बोले – "यात्रा करना अच्छा है। देश-दर्शन होता है। कहां क्या स्थिति है, इसकी जानकारी होती है। परंतु मुख्य चीज है गरीबों की सेवा। आप यात्रा कर के आयेंगे तो गांव में जा कर एक-एक बिंदु पानी का सबको देंगे। वह ठीक है। इससे लोगों को एक दिन अच्छा लगेगा। परंतु जिनका जीवन दुःखी है, उनके जीवन से गरीबी जानी चाहिए। गाडगे-बाबा की यही सिखावन थी। उस पर आप अमल करेंगे ऐसी आशा मैं करता हूं।"

★ ★ ★

युवकों का झुंड कभी-कभी कई तरह के प्रश्न करता है। हाल ही में विभिन्न विश्वविद्यालयों से छात्र, छात्राएं यहां आये थे।

"आपने कर्ममुक्ति क्यों ली?"

"आपको कर्म में युक्त करने के लिए।"

"मैं उडीसा का छात्र हूं। उडीसा के लिए आपका क्या संदेश है?"

"उडीसा में इस वक्त बहुत काम है। अकाल पडा है। गरीबों की मदद करो।"

"मैं एक अच्छा वैज्ञानिक बनना चाहता हूं। मुझे किसके विवेक (कॉन्शन्स) से काम करना चाहिए? जनता के, सरकार के या अपने?"

"अर्थात् अपने विवेक से।"

"आध्यात्मिक प्रगति कैसे हो सकती है?"

प्रश्न पूछनेवाली युवती ने प्रश्न के नीचे अपना नाम लिखा था – 'आशा'। प्रश्न पढ कर बाबा ने उत्तर दिया – "आशा रखने से।"

★ ★ ★

"जीवन का उद्देश्य क्या है?" –एक फौजी अफसर।

"आत्मसाक्षात्कार।" –बाबा

"वह कैसे होगा?"

"चित्तशुद्धि से। सारे विकार हट जायेंगे तब आत्मसाक्षात्कार होगा।"

★ ★ ★

मध्यप्रदेश के धर्मपाल सेनी अपने साथियों को ले कर आये थे। बस्तर में चलाये माता रुक्मिणी संस्थान का तथा अन्य काम का ब्यौरा उन्होंने दिया और पूछा – "अध्यात्म शब्द कैसे बना? उस क्षेत्र के संबंध में मार्गदर्शन की कृपा करें।"

"अध्यात्म शब्द गीता में है। प्रश्न पूछा है अर्जुन ने, **किं अध्यात्मम्।** उत्तर दिया है, **स्वभावो अध्यात्मं उच्यते।** अध्यात्म यानी स्वभाव। हम समझते हैं, स्वभाव यानी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार जो है वह स्वभाव। इसका स्वभाव ऐसा है, उसका वैसा। ऐसा नहीं है। स्वभाव यानी **आत्मा का भाव।** तुम लोग रात में सोते हो। निःस्वप्न गाढ निद्रा कभी आती होगी। उस गाढ निद्रा में धर्मपाल धर्मपाल नहीं रहता। गधा भी गाढ सोता है, तो वह गधा नहीं रहता है। हम सब अपने मूल स्वभाव में, आत्मा के स्वभाव में रहते हैं।

गाढ निद्रा में मनुष्य का जैसा भाव होता है वैसा ही जाग्रत अवस्था में हो तो उसे समाधि कहते हैं। समाधि यानी जाग्रत अवस्था में गाढ निद्रा। आजकल हमारे बहुत सारे साथियों के चित्त में पॉलिटिक्स भरा है। इसलिए ठीक नींद भी नहीं आती होगी। अगर मेरे सिर पर राज्य का भार होता तो मुझे

एक रात भी नींद नहीं आती । जल्दी से जल्दी उसमें से निकल जाने की इच्छा होती । पंडित नेहरू से एक बार मैंने पूछा था, नींद कितनी आती है ? उन्होंने कहा, रात में छः घंटा और दिन में आधा घंटा रखा है सोने का । लेकिन उतनी नींद मिलती नहीं । दिन का समय तो मिलता ही नहीं । मिलने के लिए बहुत लोग आते हैं । रात में 12 बजे पत्रव्यवहार पूरा कर के सोता हूं । सोने से पहले कुछ पढता हूं । झपकी आने तक पढता हूं । छः बजे उठता हूं । पंडितजी ने 15-16 साल राज्य चलाया इतनी कम नींद में । उन्होंने देश को एक सूत्र दिया था, आराम हराम है । मैंने कहा, गाढ निद्रा राम है ।

गांधीजी की बात अलग ही थी । कभी एक स्थान से दूसरे स्थान मोटर में जाते थे । पूछते थे कितना समय लगेगा ? दस मिनिट ! तो दस मिनिट गाढ सो जाते थे । ठीक दस मिनिट के बाद उठ जाते थे । निद्रा पर काबू था ।"

— कुसुम

त्यागपत्र

—● 'मैत्री' की संपादिका श्री. निर्मलाबहन देशपांडे ने 'मैत्री' के संपादक-मंडल से त्यागपत्र दिया है । अपने इस निर्णय पर निर्मलाबहन पुनः सोचेंगी ऐसी अपेक्षा के साथ संपादक-मंडल ने उसे स्वीकृति दी है ●—

वाराणसी : 7-12-76

प्रिय कालिन्दी,

पूज्य बाबा को लिखे मेरे पत्र से तुमको पता चला ही होगा कि सभी प्रकार के सार्वजनिक जीवन से निवृत्त होने का मैंने तय किया है । इस निर्णय के अनुसार किसी संस्था आदि से मेरा संबंध रहेगा नहीं । इसलिए मेरा अनुरोध है कि 'मैत्री' के संपादक-मंडल से मेरा नाम कृपया निकाल दिया जाये । मेरा यह पत्र त्यागपत्र ही समझ लें ।

मैत्री के मित्र-परिवार को मेरे प्रणाम ।

तुम सभी ने, विशेषकर तुमने, 'मैत्री' के संपादन-कार्य में मैंने कुछ भी हिस्सा न बँटाने पर भी मुझे निभा लिया, इसके लिए कृतज्ञता व्यक्त किये बिना रहा नहीं जाता। 'मैत्री' के कार्य का जिम्मा तुम लोगों पर है, उसे संभालते हुए तुम लोगों की प्रतिभा दिन-ब-दिन विकसित होते जाये, प्रभु-चरणों में यही प्रार्थना है।

तुमने इंदौर छोड़ा और मैं इंदौर पहुंची। तुम्हारे घर में सबने मुझे कालिन्दी ही मान कर मुझ पर सतत स्नेहवर्षा की। तुम्हारा-मेरा यह नाता हमेशा वैसा ही रहेगा। स्व. तात्या का तो आज विशेष ही स्मरण हो रहा है।

— सस्नेह निर्मला

पवनार: 28-1-77

प्रिय निर्मला,

तुम्हारा पत्र, जो त्यागपत्र भी है, हमारे लिए सर्वथा अनपेक्षित था। तुम तो जानती हो कि हमारा दिल इस बात को स्वीकृति कभी नहीं दे सकता। पर जब कि तुम चाहती ही हो, तुम्हारी इच्छा का सम्मान करने के लिए, इसको स्वीकृति न देना भी अनुचित होगा। भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों को 'मैत्री' का परिचय करा देने में तुम्हारा बहुत बडा हिस्सा रहा है। और तुम्हारे चिंतन-मनन का जो योगदान आजतक तुमने मैत्री को दिया, और आगे भी देती रहोगी, वह तो उसकी एक विशेष संपत्ति ही रहेगी। हम सभी सदा के लिए तुम्हारे कृतज्ञ हैं।

तुमने ठीक ही लिखा है, मैंने इंदौर छोडा और तुम इंदौर पहुंची। स्व.तात्या मुझे अक्सर कहा करते कि निर्मला यहां होने के कारण तुम्हारा अभाव महसूस ही नहीं होता। हमारा यह नाता वाकई अटूट है!

अंत में एक बात। 'मैत्री' सर्वथा आध्यात्मिक विचारों को समर्पित पत्रिका है। ऐसी पत्रिका के संपादक-मंडल में रहने से, वास्तव में, तुम्हारे निर्णय को कोई बाधा पहुंचती नहीं। इसलिए हम सभी की ओर से तुम्हें अनुरोध है कि अपने 'मैत्री' के बारे में निर्णय पर पुन: एक बार सोचो और 'मैत्री' को तुम्हारे नाम से वैसे ही मंडित रहने दो।

— सस्नेह कालिन्दी

प्रिय मित्र

ईशावास्यं इदं सर्वम्

'मैत्री', ब्रह्मविद्या-मंदिर,
पवनार (वर्धा)
12-2-77

प्रिय मित्र,

आप जानते हैं कि इस साल 'मैत्री' पत्रिका ने 13 वर्ष पूरे कर 14 वें में पदार्पण किया है। अपनी शक्ति और मति के अनुसार, सद्विचारों का पाथेय हम मित्रों के पास पहुंचाती रहीं, जिसका मित्रों ने सदा ही अत्यंत प्रेमपूर्वक स्वागत किया। 'मैत्री' के संबंध में मित्रों के जो पत्र हमारे पास आते हैं (यद्यपि ऐसे पत्रों को हम कम ही प्रकाशित करते हैं), उससे मित्रों की 'मैत्री' के अभिमुख वृत्ति और गहरी दिलचस्पी ही व्यक्त होती आयी है। बल्कि 'मैत्री' के द्वारा अपना चिंतन-अनुभव प्रकट करने में भी उन्होंने योगदान दिया है। पर अब इन मित्रों से कुछ अधिक अपेक्षा है। 'मैत्री' को पुष्ट बनाने के लिए और तत् द्वारा परस्पर पुष्ट बनने के लिए 'मैत्री' का मित्रवर्ग इससे अधिक क्रियाशील बने, ऐसी अपेक्षा है और अनुरोध भी।

मनुष्य के जीवन में ऐसी कितनी ही घटनाएं घटती हैं, जो मानव-जीवन के मूल्यों का दर्शन कराती हैं। कितने ही ऐसे प्रसंग आते हैं, जिन्हें दूसरों से कहने की मनुष्य को इच्छा होती है और जिसे सुन कर दूसरों को आनंद आता है और उन्हें उपयोग भी होता है। ऐसी कितनी ही बातें बनती हैं, जिनमें मानव-जीवन का सौंदर्य स्पष्टरूप से प्रतीत होता है। इस प्रकार के अपने छोटे-मोटे अनुभव छोटे-से लेख के द्वारा या सादे पत्ररूप में भी मित्र अगर हमारे पास भेजें तो समूचा मित्रवर्ग उससे लाभान्वित हो सकेगा।

'मैत्री' का स्वरूप आपकी आंखों के सामने है। प्रारंभ से ही उसने 'अनिंदा-व्रत' का कडाई से पालन किया है। हमारी कलम उस व्रत का भंग न करे, इतना देखना निःसंदेह आवश्यक होगा। आशा है, हमारे इस अनुरोध को मित्रों से खूब अच्छा प्रतिसाद मिलेगा। अत्यंत स्नेहपूर्वक,

— संपादक

महाराष्ट्र के संत, श्रीछत्रपति शिवाजीमहाराज

के गुरु समर्थ रामदासस्वामी की एक जनमान्य रचना है "मनाचे (मन के) श्लोक"। भुजंगप्रयात में लिखे चार-चार चरणों के ये श्लोक मन को अत्यंत सरलता से आध्यात्मिक बोध देते हैं। इस रचना के प्रारंभिक श्लोक के प्रारंभिक चरण यानी सर्वप्रथम चरण पर विनोबाजी का एक चिंतन (मराठी सेवक सितंबर 1941 से) ●–

श्री-गुणेशाय नमः

विनोबा

गणाधीश जो ईश सर्वां गुणांचा

–गणाधीश वह है जो ईश है सर्व गुणों का–

अपनी 'मनाचे श्लोक' रचना में समर्थ ने रिवाज के अनुसार प्रारंभ में ही गणपति का स्मरण किया है। ऊपर दिया चरण उसमें आया है। वह सबके परिचय का चरण है। उसमें जो विचित्रता है वह परिचय के कारण हमको महसूस नहीं होती है। लेकिन समर्थ ने उसमें 'मन का व्याकरण' इस्तेमाल किया है। 'जन का व्याकरण' इस्तेमाल करते तो **गणाधीश जो ईश सर्वां 'गणां'चा** (गणाधीश वह जो ईश सर्व 'गणों' का) कहना पडता। 'मन के' श्लोक हैं इसलिए समास का विग्रह करने का यह तरीका यहां फब गया। या यों कहिए कि यह 'आर्ष' पद्धति है। जो कुछ भी कहें, 'गणाधीश' यानी 'गुणाधीश', यह अब कंठस्थ हो गया है, वह अब टलेगा नहीं।

कंठस्थ तो वह हो गया है, पर उसे हृदयस्थ करने की जरूरत है।

---

* 'मनाचे श्लोक' महाराष्ट्र में घर-घर में प्रचलित हैं और उन्हें कंठस्थ किया जाता है – सं.

भगवान [illegible] है 'गणाधीश'। परंतु वह [illegible] ही श[illegible]
देता है। भक्त को तो उसे अपनी भाषा में जमाना होगा। भगवान होगा गणाधीश, पर उसका मुझे क्या उपयोग ? मैं गणाधीश बनूं ? मैं लोगों पर शासन चलाऊं ? मेरे पास सत्ता है ही कहां ? और होगी तो भी ऐसी होगी भी कितनी ? और जो भी कुछ है वह भी क्या मेरी है ? और मैं वह लोगों पर चलाऊं ? मैं अगर लोगों पर शासन करने लग जाऊं तो क्या मुझे लातें नहीं खानी पडेंगी ? फिर इस 'गणाधीश' को ले कर मैं क्या करूं ? मैं उसका चिंतन अवश्य करूंगा। परंतु अनुकरण नहीं कर सकूंगा। अनुकरण करूंगा तो पतित हो जाऊंगा। नृसिंह का चिंतन करें। प्रह्लाद का अनुकरण करें। नृसिंह और प्रह्लाद, दोनों भगवान के ही रूप हैं। परंतु उनमें मे एक रूप 'चिंत्य' है। और दूसरा अनुकरणीय है। इसलिए मुझे खबरदारी रखनी होगी कि 'नृसिंह' – समास का विग्रह करते हुए उसमें से अर्थ निकले 'प्रह्लाद'। व्युत्पत्ति के आधार से, जो 'सहन' करता है वह है सिंह, और जो मनुष्यों में अत्यंत सहनशील है वह 'नृ-सिंह' यानी प्रह्लाद; इस तरह 'मन का व्याकरण' चलाना अनुचित नहीं। बल्कि यही व्याकरण चलाना चाहिए। हो सकता है कि उस कारण पाणिनि की मार सहन करनी पडे। पर उसके लिए इलाज क्या है ? और जो सिंह को भी सहनशीलता सिखाने बैठा है वह पाणिनि की मार से थोडे ही डरेगा ? यही सोच कर समर्थ ने ठोक दिया, 'गणाधीश' यानी 'गुणाधीश'।

शायद वे मन में लिखना यही चाहते हों – **'गणाधीश जो दास सर्व गणों का'**। और वैसा लिखते तो कुछ भी बिगडता नहीं। क्योंकि दुनिया का स्वामी भी वही होगा जो दुनिया की सेवा करेगा। भगवान भी **'अणो रणीयान्'** हुए इसी लिए **'महतो महीयान्'** पद को पहुंचे। चक्की पीसने में जनी की मदद किये बिना ही क्या जनी के द्वारा भक्ति पिसवायी जा सकी ?* परंतु इसमें तो बहुत ही दंडेलशाही हो जाती अगर 'गणाधीश' का विग्रह 'गणों का

---

* जनी महाराष्ट्र की एक भक्त, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसके हर काम में भगवान स्वयं आ कर मदद करते थे – सं.

दास' किया जाता। इसलिए समर्थ ने सोचा कि 'गणाधीश' यानी 'गुणाधीश',

इतना ही बस है। पाणिनि अगर परीक्षा लेने बैठ जायें तो उन्हें संदेह होगा कि 'उ' कार गलती से ही पडा होगा। और शायद संदेह का लाभ भी हमको मिल जाये! और मान लें, सफाई देने की ही बात आ जाये तो सफाई दे देंगे – "देखिए गुरुजी, आपने पढाया वैसे 'गणाधीश' यानी 'गणों का ही ईश'। लेकिन गण किसके ? तो 'गुण-गण'। इतना ही मेरा कहना है। मतलब, 'गुणाधीश' यानी 'गुण-गणाधीश', या थोडे में, संक्षेप में 'गुणाधीश'। और यह भी मैंने थोडे ही में निपटाया है, ऐसी बात नहीं है। मेरा यह अर्थ 'गण' यानी 'गुण-गण', 'सर्व गुणांचा' (चरण के अंतिम दो अक्षर 'सब गुणों का') इन मराठी शब्दों में स्पष्ट होता ही है।" इतनी सफाई दी जाने पर विचारवान पाणिनि को संतोष होने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

इस तरह रूढ व्याकरण का समाधान तो समर्थ ने किया ही, लेकिन 'गणाधीश जो दास सर्वां गणांचा (गणाधीश वह जो सब गणों का दास है), यह जो अर्थ उनके मन में था, उसे भी उन्होंने पर्यायतः साध लिया। क्योंकि गणों का दास भी कौन हो सकेगा ? जिसमें सेवा के गुण होंगे वह। जिसमें सेवा के गुण ही नहीं हैं वह सेवा क्या करेगा ? तस्मात् कुल तर्क इस प्रकार हुआ –

(1) जो गुणों का स्वामी होगा वही गणों की सेवा कर सकेगा।
(2) जो गणों की सेवा करेगा वही हुआ तो गणों का स्वामी होगा।
(3) इसलिए गणाधीश यानी गुणाधीश, यह अर्थ हुआ।

इस पर से यह न समझा जाये कि गणाधीश बनने के लिए गुण प्राप्त करने हैं। जिसमें गुणों का विकास हुआ है वही गुणों का अधिपति या मार्गदर्शक बनता है। लेकिन गणों का मार्गदर्शक बनने की आत्मसंभावित प्रेरणा से कोई गुणविकास करना चाहेगा तो गुणविकास के बदले गुणसंकोच ही पल्ले पडेगा। अथवा यों भी कहा जाये कि गणाधीश बनने के लिए गुण प्राप्त करने हैं, लेकिन यह बात जरूर ध्यान में रखी जाये कि गणाधीश बनने के लिए जो अनेक गुण प्राप्त करने हैं उनमें पहला गुण है 'गणाधीश' बनने की इच्छा

का न होना । 'गणाधीश = गुणाधीश' यह समीकरण तो हो ही गया। लेकिन सवाल पैदा होता है कि गुण कौनसे ? उसका जवाब है, गीता में कहे गये दैवी संपत्ति के 26 गुण । इन गुणों का विकास करना ही गणपति की पूजा है । एक-एक वर्ष में एक-एक गुण काबिज करें तो भी 26 वर्षों में 26 गणेशोत्सव संपन्न होंगे । उसके बाद, जैसा की कहा जाता है कि 'जीतने के लिए जगह नहीं बची' इसलिए सिकंदर रोया, उस तरह भगवान के नाम से मंत्रजागर जगायें । वह सुनना भगवान के लिए लाजमी हो जायेगा ।

ग्राहकों से

१ व्यवस्था के संबंध में पत्र-व्यवहार करते समय तथा चंदा भेजते समय अपना ग्राहक-क्रमांक अवश्य लिखें । ग्राहक-क्रमांक न होने पर कार्रवाई समय पर करना संभव नहीं होता ।

२ मैत्री हर माह की ता. १० या ११ को भेजी जाती है । ता. २५ तक प्राप्त न होने पर, सुचित करें । अंक शेष हो तो पुनः भेजा जा सकेगा ।

३ वी. पी. पी. से मैत्री मंगवाने पर रु. २०-/ की वी. पी. पी. की जायेगी ।

४ ग्राहक बनानेवाले मित्रों से प्रार्थना है कि वे ग्राहक का नाम तथा पता स्पष्ट, सुवाच्य अक्षरों में लिखें ।

प्रति अंक : रु. १.५० । वार्षिक चंदा १२ से २० रु. ऐच्छिक
प्रकाशक : रणजित् देसाई, ग्रा. से. मं., परंधाम प्रकाशन, पवनार
मुद्रक : रणजित् देसाई, परंधाम मुद्रणालय, पवनार, (वर्धा) महाराष्ट्र
पत्र-व्यवहार, चंदा भेजने का पता : ब्रह्मविद्या मंदिर, पवनार, (वर्धा) महाराष्ट्र

रजि. नं. WDA–2

बापू हम सबके हृदय में विराजमान हैं।

मारग में तारण मिले, संत राम दोई
संत सदा शीश ऊपर, राम हृदय होई

ऐसे संत पुरुष को हमने देखा और उसके साथ काम करने का हमको अवसर मिला, यह हमारा बडा भाग्य है। जितना बन पडे, उतना इसका अनुसरण करने की हम कोशिश करें और आत्म-निरीक्षण, परीक्षण कर के चित्त-शुद्धिपूर्वक भगवान की शरण में जायें।

'गांधी जैसा देखा ...' — विनोबा